http://www.jainkosh.org

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[नवम भाग]

प्रवक्ता :
(अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी महाराज)

आप्तकी मीमांस में अनेक एकान्तवादोंके निराकरणके पश्चात् भेदैकान्तकी मीमांसा—इस ग्रन्थके निर्माणका मूल आधार यह है कि मोक्ष मार्गका नेता कौन है? जिसके शासनका आलम्बन करके हम प्राणी संसारके सङ्कटोंसे मुक्ति पा सकें। उस मोक्ष मार्गके नेताके सम्बन्धमें पहिले बाह्य कारणोंकी मीमांसा की गई है कि कोई आकाशमें चलते हों इस कारण वे आप्त भगवान अथवा मोक्षमार्गके नेता नहीं हैं या उनके पास देव आते हैं इस कारण वे आप्त नहीं हैं अथवा उनका शरीर दिव्य है इस कारण भी आप्त नहीं हैं उन्होंने तीर्थ चलाया तो यों तीर्थ तो अनेक लोगोंने चलाया है पर वहाँ यह सोचना होगा कि तीर्थ चलाने वाले सभी तो आप्त नहीं हैं। उनमें कोई ही आप्त हो सकता है। तो कौन आप्त हो सकता है? यह सिद्ध करनेके लिए कहा गया कि जिसमें रागादिक दोष तो रंच भी न रहे हों और ज्ञानके आवरण करने वाले कर्म भी न रहे हों ऐसा कोई निर्दोष पुरुष ही आप्त हो सकता है। निर्दोष कौन है? यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है। तो इस विषयमें समाधान दिया कि वही निर्दोष पुरुष माना जा सकता है जिसके वचन युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध न पड़ते हों। अब यह कहा गया कि हे प्रभो, हे रागद्वेषके जीतने वाले जिनेन्द्र देव अथवा अपने ज्ञानादिक गुणोंकी परिपूर्णताके कारण पूज्य अरहंत देव आप ही निर्दोष हैं क्योंकि आपका शासन न युक्तिसे विरुद्ध है न शास्त्रसे विरुद्ध है। इस ही सिलसिले को लेकर अनेक दार्शनिकोंने अपने अपने दर्शनकी बात रखी। जैसे अद्वैतवादियोंने अद्वैत सिद्धान्तमें रखा, पृथक्त्ववादियोंने पृथक्त्व सिद्धान्त रखा, एकत्ववादियोंने एकत्व सिद्धान्त रखा, अनेकत्ववादियोंने अनेकत्व सिद्धान्त रखा। केवल सन्मात्र तत्त्व मानने वालोंने अस्तित्ववाद रखा और शून्य तत्त्व मानने वालोंने नास्तित्वका सिद्धान्त रखा, नित्यत्ववादियोंने वस्तुके नित्यत्वका सिद्धान्त रखा, क्षणिकवादियोंने क्षणिकत्वका सिद्धान्त रखा। इस तरह अनेक दार्शनिकोंने अपना सिद्धान्त रखा किन्तु वह सर्वथा वादी होनेके कारण अर्थात् एकान्त आग्रह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनेसे सब अभिमत खण्डित किए गए। अब इस परिच्छेदमें वैशेषिकवादका यह भेद एकान्तके सिद्धान्तकी चर्चा चलेगी। जिसमें सर्वप्रथम विशेषवादी अपना सिद्धान्त रख रहे हैं उसीको व्यक्त करनेके लिए समंतभद्राचार्य वैशेषिकोंकी ओरसे भेदैकान्त के सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है ? इस बातको प्रकट करनेके लिये कारिका कहते हैं।

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च।
सामान्यतद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥६१॥

विशेषवादमें भेदैकान्तका सिद्धान्त—यदि एकान्तसे यह माना जाता है कि कार्य और कारणमें नानापन है अर्थात् भेद है, गुण गुणीमें नानापन है अर्थात् भेद है और सामान्य एवं सामान्यवानमें अन्यपन है अर्थात् भेदैकान्त है, यदि ऐसा माना जाता है तो इस सिद्धान्तका समाधान अगली कारिकामें किया जायगा। इस कारिकामें एक वैशेषिकोंका सिद्धान्त क्या है ? इसकी सूचना दी गई है। विशेषवादियों ने कार्य कारणमें नानापन माना है। जैसे कार्य तो हुआ घट, कारण हुआ मृत्पिण्ड तो इस कार्य कारणोंमें सर्वथा भेद है। गुण गुणीमें भेद माना है। जैसे गुणी हुआ आकाश और गुण हुआ महत्त्व इन दोनोंमें भेद है। सामान्य सामान्यवानमें भेद माना हैं। सामान्य तो हुए पर सामान्य अथवा अपरसामान्य और सामान्यवान हुए पदार्थ, द्रव्य, गुण, और कर्म। इसी प्रकार भाव और अभावके विशेष्यमें भेद माना है। अभाव हुआ अभाव ही और जिसमें अभाव पाया जाता वे हुए पदार्थ अभावके विशेष्य, जैसे घटका अभाव, तो यहाँ दो बातें कहीं गई—अभाव और घट। इनमें भेद माना जाता है। इसी प्रकार विशेष्य और विशेषवानमें भी भेद, अवयव अवयवीमें भी भेद इस तरह एक भेद एकान्तका सिद्धान्त है। इस दार्शनिकका नाम ही वैशेषिक है। जहाँ विशेष अर्थात् भेद भेद ही माना जाता है। थोड़ा भी कुछ परिचय विशिष्ट प्राप्त हो रहा हो वहाँ भेदका एकान्त कर दिया जाता है। ऐसी वैशेषिकवाद सिद्धान्त की बात इस कारिकामें सूचित की गई है।

कार्य कारण, गुण गुणी, सामान्य सामान्यवान, क्रिया क्रियावान, विशेष विशेषवान, अभाव अभावविशेष्यमें भिन्नताका निर्देश—अब पूर्वपक्षके रूपसे विशेषवादियोंके सिद्धान्तकी विशेष चर्चा की जा रही है। विशेषवादी कहते हैं कि कार्य तो कहलाता है तंतु आदिक अवयवके कारणभूत चलने आदिक क्रिया। जैसे कपड़ा बनता है तो उसमें कारण होता है अवयव अवयवीका संयोग और उसका कारण है तंतुवोंमें होने वाले चलन आदिक कर्म। तो कार्यका अर्थ हुआ क्रिया अवयवमें होने वाली क्रिया तथा अनित्य संयोग आदिक गुणमें होने वाली क्रिया तथा प्रध्वंसाभाव भी कार्य कहलाता है प्रध्वंसाभाव मुदगर आदिकके कारणसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनता है, तो वहाँ मुद्गर आदिकका व्यापार हुआ वह भी कार्य है। तो कार्यके अर्थमें क्रिया, संयोग, प्रध्वंस इन सबका ग्रहण किया जाता है, कारणके मायने है समवायी कारण और कर्मवान अनित्य गुणवान और पट आदिक अवयव तथा जो प्रध्वंसाभाव निमित्त हुआ सो भी कारण कहलाता है ये सभी कारण है मुदगर आदिक ये सभी कारण कहलाते हैं। तो इन कार्य और कारणोंमें परस्पर भेद है, ये एक नहीं हो जाते हैं। कार्य अन्य है और कारण अन्य जिस प्रकार कार्य व कारणमें अन्यता है उसी प्रकार गुण अन्य है और गुणी अन्य है। यहाँ गुण शब्दका अर्थ है नित्य गुण, क्योंकि अनित्य गुणका तो कार्य कारणमें वर्णन किया गया है। जैसे महत्त्व नित्य गुण है और गुणी है आकाश, उस महत्त्व गुणका आश्रयभूत पदार्थ। सो यों गुण और गुणीमें भी भेद एकान्त है। सामान्यका अर्थ है पर सामान्य और अपरसामान्य। जो सर्व पदार्थोंमें व्यापकर रहने वाला है वह तो पर सामान्य है वह एक ही है, और जो भिन्न-भिन्न जातियोंमें साधारण रूपसे रहने वाला सामान्य है वह अपर सामान्य है, जैसे सत्त्व, यह तो पर सामान्य है क्योंकि सब पदार्थोंमें पाया जा रहा है, और जीवत्व आदिक मृत्तिकात्व आदिक ये अपर सामान्य हैं ये कुछ पदार्थोंमें पाये जाते हैं, उनके अतिरिक्त अन्यमें नहीं। यह सब सामान्य है और सामान्यवान है द्रव्य गुण कर्म जिसमें सामान्यका सम्बन्ध है वह सामान्यवान कहलाता है। इनमें भी परस्पर भेद है। इसमें जो भी बात परिचयमें आती है वह जुदी जुदी ही है, इस तरह यह सिद्धान्त बनता है कि क्रियावानमें अवयव अवयवीमें गुण गुणीमें विशेष विशेषवानमें, सामान्य सामान्यवानमें अभाव और अभावके विशेष्यमें भिन्नता ही है, क्योंकि भिन्न प्रतिभास होनेसे। जब इनका परिज्ञान जुदे-जुदे रूपसे हो रहा है तो ये सब पदार्थ जुदे-जुदे ही हैं। जैसे हिमालय और विन्ध्याचल, ये दो पर्वत भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिभासमें आ रहे हैं अतएव भिन्न ही हैं।

विशेषवादमें अनुमान प्रयोग द्वारा भेदैकान्तकी सिद्धि—भेदैकान्तकी सिद्धिमें यह अनुमान प्रयोग है कि ये सर्व तत्त्व परस्पर भिन्न ही हैं, क्योंकि इनका प्रतिभास भिन्न भिन्न रूपसे हो रहा है। इस अनुमान प्रयोगमें दिया गया हेतु असिद्ध नहीं है। अर्थात् ये सभी तत्त्व भिन्न प्रतिभास वाले बन रहे हैं। यहाँ साध्य बनाया गया है भिन्नता तो भिन्नतासे विशिष्ट जो धर्मी है अर्थात् ये सभी तत्त्वहैं, इनमें भिन्न प्रतिभासपना पाया जा रहा है इस कारण हेतु असिद्ध नहीं है और भिन्न प्रतिभास सभी लोगोंको विदित है अवएव संदिग्धासिद्ध भी नहीं है। अर्थात् हेतुके विषयमें रंच भी संदेह नहीं है तथा अज्ञातासिद्ध भी नहीं है। अर्थात् यह बिल्कुल भी न जाना जा रहा हो, इस तरहका असिद्ध नहीं है। तथा वादी प्रतिवादीमेंसे किसी एकको ही मंजूर हो ऐसा भी नहीं है। ये सभी भिन्न भिन्नरूपसे समझे जा रहे हैं। यह बात वादियोंको भी इष्ट है और प्रतिवादियों को भी इष्ट है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भेदैकान्तसाधक हेतुका व्यभिचार दूर करनेके प्रयत्नमें "एक पुरुषापेक्षया" विशेषण लगानेकी वैशेषिकोंकी योजना—अब यहां कोई वैशेषिकोंके प्रति शंका कर रहा है कि वैशेषिकोंका दिया गया हेतु (भिन्न प्रतिभासत्वात्) भिन्न पुरुषके प्रतिभासके विषयभूत अभिन्न अर्थके साथ व्यभिचारी हैं अर्थात् जुदे-जुदे दो पुरुषोंने देवदत्त और यज्ञदत्तने किसी एक ही पदार्थका प्रतिभास किया। जैसे मानो सामने रखी हुई चौकीको उन दो पुरुषोंने जाना तो उनका प्रतिभास तो भिन्न भिन्न हो गया। क्योंकि देवदत्तके द्वारा जाना गया प्रतिभास अन्य है और यज्ञदत्तके द्वारा किया गया प्रतिभास अन्य है। तो प्रतिभास भेद तो हो गया किन्तु अर्थ भेद नहीं है। वस्तु वह एक ही है। तब यह व्याप्ति न रही कि जहाँ भिन्न प्रतिभास हो वहाँपर अन्यपना ही सिद्ध किया जाय। इस शंकाके उत्तरमें विशेषवादी कहते हैं कि इस भिन्न प्रतिभासत्व हेतुमें "एक पुरुषकी अपेक्षासे" इतना विशेषण जोड़ देना चाहिए। तो जो एक पुरुषकी अपेक्षासे भिन्न प्रतिभास हो तो वहां भेद एकान्त होता है। यहां एक चौकीको देवदत्त और यज्ञदत्त ऐसे भिन्न भिन्न पुरुषोंने जाना है। एक ही पुरुष जाने और उसके प्रतिभासमें आये तो समझना चाहिए कि उस प्रतिभासके विषयभूत पदार्थ भी भिन्न-भिन्न हैं। तो एक पुरुषकी अपेक्षासे भिन्न-भिन्न हैं। तो एक पुरुष की अपेक्षासे भिन्न प्रतिभासपना होनेसे इतना हेतु कहनेपर हेतुमें यह व्यभिचार नहीं आता है।

भेदैकान्तसाधक सविशेषण हेतुमें भी व्यभिचार निवारणार्थ भिन्नलक्षणत्वकी विशेषता लगानेकी वैशेषिकोंकी योजना—अब विशेषवादियोंके प्रति शंकाकार कहता है कि इतना भी विशेषण लगा दिया जाय कि एक पुरुषकी अपेक्षासे भिन्न प्रतिभास होनेसे, हेतुमें एक पुरुषापेक्ष विशेषण लगा देनेपर भी देखिये ! किस पुरुषने क्रमसे एक ही पदार्थके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रतिभास किया? तो देखो ! वहाँ जानने वाला भी एक पुरुष है और पदार्थ भी एक ही जाना गया है, लेकिन उसमें भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिभास हुआ है। तो भिन्न प्रतिभास होनेपर भी भेद सिद्ध न हो सका अतएव भेद प्रतिभास होनेसे यह हेतु व्यभिचरित है। इस शङ्काके उत्तरमें विशेषवादी कहते हैं कि जिसमें भिन्न लक्षण पाया जा रहा हो उससे संबंधित जो भिन्न प्रतिभासपना है, वह यहाँ हेतु बताया गया है, किन्तु यहाँ तो जैसे एक ही वृक्षके सम्बन्धमें एक ही पुरुषने दूरसे देखा तो अस्पष्ट प्रतिभास हुआ। निकट जाकर देखा तो स्पष्ट प्रतिभास हुआ। यों एक ही पुरुषके द्वारा एक ही पदार्थमें भिन्न प्रतिभास हुआ अतएव भेदकी आपत्ति नहीं दी जा सकती, क्योंकि उन दोनों पुरुषोंमें जो विषय हुआ है वह वृक्ष एक है, वहाँ भिन्न लक्षण नहीं पाया जा रहा है। जहाँ लक्षण भिन्न पाया जा रहा हो उसका जो भिन्न प्रतिभास है वह भेद एकान्तको सिद्ध करता है। कार्य-कारणमें, गुण-गुणीमें, सामान्य-सामान्यवानमें भिन्न लक्षण पाया जा रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, इस कारण वहाँ भेद एकान्त सिद्ध होता है। एक वस्तुमें भिन्न लक्षण रूपसे प्रतिभास नहीं हो सकता, भले ही निकट और दूर रहनेके कारण अस्पष्ट और स्पष्ट प्रतिभास हो, मगर प्रतिभासोंका विषयभूत पदार्थ तो एक वृक्ष है, उसमें भिन्न लक्षण नहीं पाये जा रहे हैं। तो एक वस्तुमें भिन्न लक्षण रूपसे प्रतिभास नहीं होता, अतः हेतु व्यभिचारी नहीं है।

भेदैकान्तसाधक हेतुके विरुद्धादिदोषों रहित होनेका शंकाकारका कथन—यह हेतु विरुद्ध भी नहीं है, क्योंकि समस्तरूपसे अथवा एक देशरूपसे विपक्षमें याने अभेदमें भिन्न प्रतिभासत्व हेतु नहीं पाया जाता। विरुद्ध दोष तो तब आया करता है जब हेतु साध्यके विरुद्धके साथ व्याप्ति रखे। यहाँ हेतु कहा गया है भिन्न प्रतिभासत्वात् और साध्य यहा गया है भेद एकान्त। तो भिन्न प्रतिभासपना अभेदमें नहीं हुआ करता है इस कारण यह हेतु विरुद्ध भी नहीं है। भेद एकान्तका साधक यह हेतु कालात्ययापदिष्ट भी नहीं है, क्योंकि इस अनुमान प्रयोगमें बताये गये वृक्षमें न प्रत्यक्षसे दाध है न आगमसे बाधा है। कालात्ययापदिष्ट दोष उसे कहते हैं कि जहाँ पक्ष ही सिद्ध न हो और उसमें अनुमान प्रयोग किया जाय। जैसे पर्वत है ही नहीं और कह रहे कि इस पर्वतमें अग्नि है। है कुछ भी नहीं तो ऐसी घटनायें जहाँ जैसे कि पक्ष सिद्ध ही न हो अथवा बाधित हो और वहाँ अनुमान प्रयोग करे तो यह दोष होता है लेकिन प्रकृत अनुमानमें पक्ष अबाधित है अतएव यह दोष नहीं आता। अब यहाँ विशेषवादियोंके प्रति स्याद्वादी शङ्का करते हैं कि देखिये! कार्य कारणमें तादात्म्य है, गुण गुणीमें सामान्य सामान्यवानमें तादात्म्य पाया जा रहा है क्योंकि ये अभिन्न देशी हैं। जिनमें तादात्म्य नहीं होता। जैसे कि विन्ध्याचल और हिमालय इनमें तादात्म्य नहीं है अतएव अभिन्न देशपना भी नहीं है किन्तु प्रकृत कार्य कारण गुण गुणी सामान्य सामान्यवानमें अभिन्न देशपना है, इस कारण अनुमानसे पक्षमें बाधा आती है। विशेषवादी उक्त शङ्काका उत्तर देते हैं कि शङ्कामें जो यह कहा गया था कि कार्य कारण आदिकमें तादात्म्य है, अभिन्न देश होनेसे सो यहाँ अभिन्न देश सिद्ध नहीं हो रहा है, क्योंकि ऐसे अभेद देश दो प्रकारसे परखे जाते हैं—एक शास्त्रीय देशाभेद और दूसरा लौकिक देशाभेद। सो शास्त्रीय देशाभेद तो यहाँ असिद्ध है क्योंकि कार्यका जो अपना कारण देश है वह जुदा है और कारणका अपने अन्य कारण का देश जुदा है। जैसे पट कार्य हुआ तो पटका स्वकीय कारण है तंतु और तंतुओं का कारण है कपास तो देखो सभीका देश भिन्न-भिन्न रहा। इसी कारण गुण गुणी का सामान्य सामान्यवानका देश समझ लेना चाहिए। अब लौकिक देशभेदकी बात सुनो! लौकिक देशाभेद बताकर तादात्म्य बनानेकी जो शका की गई है सो देखिये! लौकिक देशाभेद आकाश आत्मा आदिकमें पाया जा रहा है। तो जिस ही क्षेत्रमें आत्मा है उस ही क्षेत्रमें आकाश है। तो लौकिक देशाभेद तो रह गया पर तादात्म्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है, तो लौकिक देशाभेदको हेतु मानोगे तो यह हेतु व्यभिचरित हो जाता है तब यह अनुमान युक्त नहीं रहता। तो जब तादात्म्यको सिद्ध करने वाला अनुमान असंगत हो गया तो अब हमारे प्रकृत पक्षमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती है, अर्थात् गुण गुणी कार्य कारण सामान्य सामान्यवान ये सभी भिन्न भिन्न हैं।

कथंचित् तादात्म्यका भी निराकरण करते हुए वैशेषिकों द्वारा भेदैकान्तके समर्थनका उपसंहार—अब यहां कोई शंका करता है कि इन सब बातों में कथञ्चित् तादात्म्य तो प्रत्यक्षसे ही प्रतीत हो रहा है। जैसे गाय है तो गाय व्यक्ति और गो सामान्य ये न्यारी न्यारी जगहमें कहां पडे हैं? इनका कथञ्चित् तादात्म्य देखा ही जा रहा है। इस कारणसे सर्वथा भेद पक्षकी बात कहना बाधित है। अब इस शंकाके उत्तरमें वैशेशिक कहते हैं कि सर्वथा भेद पक्षमें बाधा नहीं दी जा सकती। क्योंकि कथञ्चित् तादात्म्यके साथ भेदका विरोध है। या तो भेद ही हो अथवा अभेद ही हो कथञ्चित् तादात्म्यका क्या मतलब? तब यहाँ कोई कहता है कि तब तो इस कारण भेद ही मत रहो, पूरा अभेद मान लिया जाय। उत्तरमें वैशेषिक कहते हैं यह कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि पदार्थमें भेद पूर्वसिद्ध है कार्य कारणत्व आदिकका भेद सभी लोगोंने माना है ऐसा वह पूर्व प्रसिद्ध है किन्तु तादात्म्य पूर्वसिद्ध नहीं है, भिन्न-भिन्न जचने वाले गुण गुणीका ही तो अब तादात्म्य अथवा समवाय जैसा सम्बन्ध बताकर समझाया जाता है। यदि तादात्म्य पहिलेसे सिद्ध हो जाय तो बस एक ही चीज रही। अब कार्य कारण आदिक बन ही नहीं सकते और उनमें धर्मका कोई अधिकरण हो और धर्मीका कोई आधेय हो अथवा धर्म धर्मी हो अधिकरण आधेय हो, ये सब बातें कुछ भी नहीं बन सकतीं। जहाँ सर्वथा तादात्म्य पूर्वसिद्ध मान लिया जाय और इतना ही नहीं, क्रियाका व्यपदेश आदिकका भेद नहीं बताया जा सकता कि यह इसकी क्रिया है, यह घटकी शीतनिवारण क्रिया है किन्तु उसका कारणभूत तंतुवोंकी क्रिया नहीं है और उनमें रहने वाले शुक्लत्वादिक गुणों की क्रिया हैं, इस प्रकार फिर भेद भी न बन सकेगा, अतः गुण गुणी कार्य कारण आदिकका परस्पर तादात्म्य मानना युक्त नहीं है। अतः मानना ही होगा कि जिसका भी भिन्न प्रतिभास हो रहा है वे सब पृथक पृथक ही हैं, भेद और तादात्म्यका वैयधिकरण्य है, भेदका तो सर्वथा भिन्न वस्तु आधार है और अभेदका आधार सर्वथा अभिन्न वस्तु है। यों भेद और तादात्म्यमें जुदे-जुदे अधिकरण पाये जानेसे वैयधिकरण आता है और फिर तादात्म्यका और भेदका परस्पर विरोध है। जैसे कि शीत स्पर्श उष्ण स्पर्शका परस्पर विरोध है। भेद और तादात्म्यको एक आधारमें मान लिया जाय तो संकर और व्यतिकर नामके दोष भी हो जाते हैं। और यदि संकर व्यतिकर दोषकी आपत्ति दूर करनेका यत्न करोगे तो यह तो है ही कि दोनों पक्षोंमें कहा गया दोष आता है। भेदरूप और अभेदरूप ये दो रूपरस अभेद भी भेदरूप बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गया और अभेदरूप बन गया। तो यों यदि उनमें दुरूपता मान ली जाती है तो फिर कहीं भी विराम न मिल सकेगा। न ज्ञान हो सकेगा और सभीका अभाव हो जायगा, इस कारण गुण गुणी, अवयव अवयवी, सामान्य सामान्यवान, क्रिया क्रियावान आदि में भेद एकान्त ही है। वहाँ कथञ्चित् तादात्म्य कहना अथवा अभेद कहना ये सब मंतव्य असमीचीन हैं। इस प्रकार वैशेषिकवादियोंने अपने वैशेषिकवादका सिद्धान्त रखा। अब समन्तभद्राचार्य इस भेद एकान्तका निराकरण करते हैं।

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥ ६२ ॥

भेदैकान्तमें एकका अनेकोंमें रहनेकी असंभवता आदि दोषोंकी आपत्ति बताते हुए भेदैकान्तका निराकरण—गुण गुणी, अवयव अवयवी आदिकमें सर्वथा भेद मान लेनेपर यह आपत्ति आती है कि फिर वहाँ एककी अनेकमें वृत्ति नहीं बन सकती, क्योंकि वहाँ अंश ही नहीं है। अवयवी आदिकके बीचमें किसी भी एकका सर्वथा भेद स्वीकार कर लेनेपर अपने कार्यके आरम्भक अवयव आदिक जो अनेक हैं उनमें वृत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् अवयवीका नाना अवयवोंमें रहना नहीं बन सकता, क्योंकि वे सब निरंश हैं और यदि अवयवीमें विभाग बना लोगे तब वे बहुत अवयवी बन जायेंगे। और, यों अवयवीका अवयवोंमें रहना मान लिया जायगा तो बहुत अवयवी हो जायगे, जैसे एक घटके आरम्भक बहुतसे अवयव हैं तो जितने अवयव हैं उतने ही वहाँ अवयवी कार्य कहलायेंगे। तब एक ही अवयवीका अब एकत्व नहीं रह सकता। ऐसा जो स्याद्वादमतसे बहिर्भूत हैं उनके सिद्धान्तमें भेद एकान्त माननेपर यह आपत्ति आती है कि फिर वह एक अनेकमें किस प्रकार रह सकेगा ? कार्य कारणका गुण गुणीका, सामान्य सामान्यवानका यदि एकान्तसे भिन्नपना ही मान लिया जाता है तो एक कार्य द्रव्यकी अनेक कार्योंमें फिर वृत्ति खोजना चाहिए कि वह किस तरहसे रह सके ? यदि एक कार्यका अनेक कारणोंमें भेद नहीं मानते, तो कार्य कारण भाव ही नहीं बन सकता। जैसे कि जो कार्य नहीं और कारण नहीं उनमें वृत्ति न होनेसे कार्य कारण भाव नहीं बन सकता। तंतु और घटमें क्या कार्य कारण भाव बन सकता है ? क्यों नहीं बनता ? यों नहीं बनता कि तंतुकी घटमें वृत्ति नहीं है ! सो वृत्ति माननी ही पड़ेगी और जब वृत्ति माननेके लिए चलेंगे, कार्य कारणोंमें रहता है ऐसी वृत्ति माननेको जब चलेंगे ये शङ्काकार तो वे पूछे जा सकते हैं कि प्रत्येक आधारमें वह कार्य एक देशरूपसे रहा या सर्वदेशरूपसे रहा? जैसे तंतुओं में पट बना तो पट कार्य तंतुओंके सर्वदेशसे बना या एक देशसे बना ? इन दोनों विकल्पोंमेंसे यदि यह माना जाता है कि कोई एक कार्य द्रव्य अनेक अधिकरणोंमें रह रहा तो प्रत्येक आधारमें वह एक देशसे नहीं रह सकता, क्योंकि अवयवीको निरंश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माना है। उसके भाग नहीं माने गए हैं, और वह अवयवी समस्त अवयवोंमें सर्वरूपसे भी नहीं रह सकता क्योंकि फिर अवयवी भी बहुत मानने पड़ेंगे। जितने अवयव हैं उतने ही अवयवी बन जायेंगे, क्योंकि अब तो अवयवीका अवयवोंके साथ सर्वरूपसे सम्बन्ध मान लिया गया। तो जितने भी संयोगी आदिक गुणी हैं उतने ही संयोग आदिक अनेकस्थ गुण बन जायेंगे और जितने सामान्यवान पदार्थ हैं उतने ही सामान्य बन जायेंगे। क्योंकि अब तो सर्वदेशसे वृत्ति मान रहे हो अवयव अथवा अवयवी ये परस्पर सर्वदेशमें रहते हैं। तब सामान्य सामान्यवानका कोई व्यपदेश ही नहीं बन सकता।

प्रदेशवता, समवाय, सम्बन्ध आदिकी विशेषवादमें युक्त होनेकी अयुक्तता—अब यदि अवयवियोंको कार्योंको, पदार्थोंको कथञ्चित् प्रदेशवान मान लिया जाता, जिसे मानना चाहिए तो इस विशेषवादके सिद्धान्तमें वहाँ वह अवयवी आदिकके रहनेका विकल्प और अनवस्था दोष आता है। तंतुओंसे पटका भेद मान लेनेपर पट चूंकि अवयवों सहित है, सांश है तो कैसे वहाँ अपने अवयवोंमें एक देश रूपसे अथवा सर्व देशरूपसे बराबर वृत्ति बनेगी और यों फिर उत्तरमें भी वही प्रश्न चलेगा तो अनवस्थिति आ जायगी। तो वहां फिर अवयवी आदिक अवयवोंमें सर्व वह एक ही नहीं रह सकता है। यह दोष स्याद्वादसे बहिर्भूत मतमें दुर्निवार दोष होता है। यों अवयवी अवयवोंमें एक देशसे न रहा और सर्वदेशसे भी न रहा। यहाँ वैशेषवादी कहता है कि एक देशसे भी न रहे और सर्व देशसे भी अवयव अवयवीमें न रहे, किन्तु रहता ही है, यह कथन शंकाकारका बिल्कुल असंगत है क्योंकि एक देश और सर्व देश इन दोको छोड़कर अन्य और कोई प्रकार भी नहीं है। शंकाकार कहता है कि समवाय नामका एक अन्य प्रकार तो है क्योंकि ऐसा बोध होता है कि ये सब "समवैति" अर्थात् सम्बन्धित करते हैं अवयवादिकोंमें अवयवी समाता है ऐसा सम्बन्ध है। सो देखिये अब समवायको छोड़कर जब अन्य कोई वृत्यर्थ न रहा रहनेका अर्थ न रहा, सो समवाय नामका प्रकारान्तर मानना ही चाहिए। इस शंकाके उत्तर में कहते हैं कि इस ही समवायके सम्बन्धमें तो विवाद चल रहा है। किन्हीं भी शब्दोंसे कहो, इस ही भावके सम्बन्धमें विवाद है। यही तो विचार किया जा रहा है कि अवयव आदिकोमें अवयवी आदिक प्रत्येक आधारके प्रति क्या एक देशसे समवाय को प्राप्त होते हैं या सर्व देशसे ? अवयव अवयवीमें क्या समस्त प्रदेशोंसे रह रहा है या किसी एक देशमें रह रहा है ? और किसी प्रकार रहनेकी विधि ही नहीं है सो इन दोनों ही पक्षोंके दोषको बताया गया है। इस प्रकार कार्य गुण और सामान्यका अपने आश्रयभूत विवादापन्न अब द्रव्य गुण कर्मके साथ एकान्तसे भेदरूप नहीं है, क्योंकि इनमें कार्य, गुण, सामान्यकी वृत्ति पायी जा रही है। जिसका जिससे एकान्तता भेद होता है उसका उस जगह रहना सम्भव नहीं है। जैसे कि हिमाचल पर्वतमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में विन्ध्याचल नहीं रहता। क्योंकि हिमाचलसे विन्ध्याचल अत्यन्त भिन्न है और अवयवी आदिकका अपने आश्रयभूत अवयवोंमें रहना पाया ही जा रहा है इस कारण एकान्तसे भिन्नता इसमें नहीं कही जा सकती है। इस अनुमानके द्वारा गुण गुणी आदिककी भिन्नताका पक्ष बाधित हो जाता है। इस कारण भिन्न प्रतिभासत्वात् यह हेतु कालत्यायपदिष्ट है अर्थात् प्रत्यक्षसे वाधित है। अतः यह मानना चाहिए कि लक्षण भेद ही इसमें है किन्तु आधारभूत वस्तु एक ही है और ये सब उसके अंश हैं।

अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें संयोग सम्बन्धसे भी 'इहेदं' व्यपदेशकी अशक्यता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि यह अनुमान समीचीन नहीं है जो अनुमान किया गया है कि जिसका जिससे भिन्नताका एकान्त है उसकी वहाँ वृत्ति नहीं पाई जाती है। यह अनुमान असम्यक है, इसका प्रमाण यह है कि जब थालीमें दही रखा है तो वहाँ देखो थाली भिन्न चीज है दही भिन्न चीज है फिर भी थालीमें दहीकी वृत्ति पायी जा रही है। तब यह बात कहाँ रही कि जो जिससे भिन्न है उसका वहाँ रहना नहीं पाया जाता। मटकेमें दही रखा है मटका भिन्न है दही भिन्न है फिर भी मटकेमें दही मौजूद है इससे सिद्ध है कि आपका यह अनुमान मिथ्या है तब हमारे दिए गए उस अनुमानमें कि ये सभी परस्पर भिन्न हैं क्योंकि भिन्न प्रतिभास हो रहा है यह बात सत्य साबित होती है, संयोग ही तो एक वृत्ति कहलाती है और वह भिन्न पदार्थोंमें ही हो सकती है। जो अभिन्न पदार्थ हों उनमें संयोग क्या कहलायगा? अतः भिन्नताका एकान्त सही तत्त्व है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका युक्ति रहित है। देखिये—जो दो संयोगी पदार्थ हैं जैसे मटका और दही, इन संयोगी पदार्थोंका जो कि संयोग परिणामात्मक बन गए हैं उनमें सर्वथा भेद सिद्ध नहीं किया जा सकता। अन्यथा यदि सर्वथा भेद ही मान लिया जाय तो वहां संयोगका अभाव हो जाना चाहिए। संयोगी पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न संयोगकी उत्पत्ति यदि मानी जाय तो किसी एकका अन्यमें संयोग है यह कैसे व्यपदेश होगा याने दहीका और मटकेका एकदम अन्यत्व मान लिया जाय तो दहीका मटकेमें संयोग है यह बात कैसे बन सकेगी? जिससे कि संयोगरूप वृत्ति वहाँ सिद्ध हो सके?

भेदैकान्तमें संयोगियोंमें संयोगकी सिद्धिकी भी अशक्यता—यदि कोई शंकाकार यह कहे कि उन संयोगी दोनों पदार्थोंका है ऐसा व्यपदेश बन जाता है। तो इस शंकाकी विडम्बना देखिये यों तो वह संयोग किसी क्रियासे भी हुआ है और काल आदिकसे भी उत्पन्न हुआ है तब फिर क्रियाका है यह संयोग या कालका है यह संयोग ऐसा भी व्यपदेश हो जाना चाहिए। लोग कुछ ऐसा मानते हैं कि इस मटकेमें कर्म और काल आदिकका संयोग है। यदि कोई यह कहे कि वे दोनों समवायी कारण हैं दही और मटका, जिसमें संयोग हुआ है वे संयोगके समवायके कारणभूत हैं, यदि ऐसा कहा जाय और इसी बुनियादपर यह व्यपदेश बनायें कि इन दोनों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संयोगियोंका यह संयोग है। इस तरह यदि समवायी कारणसे मानते हो तो वह शंकाकार यह बताये कि इन दोनों में वह समवायी कारणपना क्यों आया ? कर्म आदिकमें वह समवायी कारणता क्यों नहीं आयी ? यदि कोई यह कहे कि इन संयोगियोंमें संयोग है ऐसा ज्ञान होता है उससे सिद्ध है कि उन ही पदार्थोंमें संयोगका समवाय सिद्ध है तब फिर एक यह बड़ा प्रश्न हो बैठता है कि वह समवाय नामका पदार्थान्तर यहां ही क्यों हुआ ? और इसमें ही यह संयोग है ऐसे ज्ञानको क्यों कराया ? कर्मादिकमें यह समवाय क्यों नहीं हो गया ? अथवा वहां इस इस थाली में कर्म है आदिक व्यपदेश क्यों न हो बैठे ? क्योंकि अब तो संयोग समवाय पदार्थ सभी अत्यन्त भिन्न भिन्न चीज हैं। यदि शंकाकार यह कहे कि उन ही संयोगी पदार्थोंके द्वारा जो कि समवायी कारणोंके द्वारा ही विशेषण विशेष्य भाव सिद्ध हो रहा है, किस प्रकार कि ये दोनों संयोग समवाय वाले हैं। अर्थात् मटका और दहीमें संयोगका समवाय हुआ है। इस तरह विशेषण विशेष्यभाव माना है तो वहाँ भी यह यहाँ है ऐसा ज्ञान क्यों बना ? कर्मादिकमें क्यों न बना ? यदि कहो कि कर्मादिकमें विशेषण विशेष्यभाव नहीं है इस कारण वहाँ यह ज्ञान नहीं बनता कि इस मटके और दहीमें कर्मका समवाय अथवा संयोग है। तो यहाँ भी यह प्रश्न खड़ा रहता है कि वह विशेषण विशेष्य भाव यहाँ ही क्यों हुआ ? कर्मादिकमें क्यों न हो गया ? सभी जगह होना चापिए। क्योंकि अत्यन्त भेदवाली बात सब जगह समान है।

अदृष्ट विशेषके कारण "इहेद" व्यपदेश माननेपर विज्ञानवादके प्रवेशका प्रसङ्ग—शंकाकार कहता है कि यहाँ उस हीं प्रकारके अदृष्ट विशेषका नियम है इस कारणसे मटकेमें दही है इस प्रकारका सम्बन्ध होता है व्यपदेश होता है और कर्मादिकमें नहीं होता। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते है कि फिर तो विशेषण विशेष्य भावसे क्या प्रयोजन रहा ? समवायसे क्या मतलब? संयोग माननेकी भी क्या जरूरत ? हाँ जगत ऐसा ही कह बैठे जहाँ कोई उत्तर न मिले कि भाई ऐसा ही अदृष्ट विशेषका नियम है उसीसे ही समवाय विशिष्ट यह समवायी है यह ज्ञान बन जायगा। इस पदार्थमें यह ही है यह विज्ञान बन जायगा और यहाँ ही यह पदार्थ संयुक्त है ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो बैठेगी। केवल एक अदृष्ट विशेष ही मानें और विशेषण विशेष समवाय संयोग आदिक माननेका श्रम क्यों किया जा रहा है ? अथवा जितने भी ज्ञान विशेष हैं वे सब अदृष्ट विशेषके वशमें रहते हैं। फिर पदार्थोंके भेद और प्रभेदकी कल्पना करनेका भी प्रयोजन क्या रहा ? और फिर ऐसी स्थितिमें तो विज्ञानवादका प्रवेश हो जायगा। क्योंकि इस ढंगमें विज्ञानाद्वैतकी ही अदृष्ट विशेषपनेकी सिद्धि है। वहाँ माना गया है कि विज्ञान ही अदृष्ट है, विज्ञान ही कर्म है, ऐसा तो विज्ञानवादियोंने कहा है। विज्ञानवादियोंके यहाँ एक वासना विशेष ही अदृष्ट कहलाती है। और, वह वासना विशेष पूर्व विज्ञानका विशेष है, क्योंकि उसके अनन्तर होने वाला जो पूर्वज्ञान है वह पूर्वज्ञान अनन्तर ज्ञानका प्रबोधक है ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विज्ञानवादके सिद्धान्तमें कहा है तो सब कुछ उत्तर एक वासना विशेषका बन जायगा। फिर विशेषण, विशेष्य, समवाय, सम्बन्ध, संयोग, पदार्थोंके भेद प्रभेद इन सबकी कल्पना करना व्यर्थ है।

शङ्कासमाधानपूर्वक विज्ञानाद्वैतवादी द्वारा विज्ञानमात्र तत्त्वका समर्थन

अब यहाँ शङ्काकार नैयायिक विज्ञानवादीके प्रति कह रहे हैं कि देखिये ! अप्रबुद्ध वासना किसी ज्ञान विशेषको उत्पन्न नहीं कर सकती। यह नील है, यह पीत है आदि क्षणोंके रूपमें अप्रबुद्ध वासना किसी क्षयविशेषको उत्पन्न नहीं कर सकती, क्योंकि यदि अप्रबुद्ध वासना ही ज्ञानविशेषको उत्पन्न करने लगे तो एक साथ ही सब ज्ञान विशेष हो जाना चाहिए, क्योंकि वासना तो अप्रबुद्ध रही और अप्रबुद्ध वासनासे ज्ञान माना तो उसमें यह नियम कैसे बनेगा कि इस वासनासे यह ज्ञान बनेगा ? अप्रबुद्धताकी सर्वत्र समानता है, ऐसी अप्रबुद्ध वासना तो किसी ज्ञानविशेषको उत्पन्न करती नहीं। अब रही प्रबुद्ध वासनाकी बात तो प्रबुद्ध वासना जब ज्ञान विशेषको उत्पन्न करने लगेगी तो भी वासना प्रबोधक हेतुओंकी अपेक्षा करेगी और वह हेतु है बहिर्भूत पदार्थ। तो यों विज्ञानमात्र ही कैसे रहा ? बहिर्भूत पदार्थका भी अनित्यत्व सत्य है, ऐसा कहने वाले नैयायिकोंके प्रति क्षणिकवादी योगाचार (विज्ञानाद्वैतानुयायी) बौद्ध कहते हैं कि देखिये ! यह शङ्का यों सङ्गत नहीं है कि वासना प्रबोध भी तो विज्ञान विशेष ही सिद्ध होती है। विज्ञान विशेषके अभावमें बाह्य पदार्थोंकी सत्ता मात्रसे ये बाह्य पदार्थ प्रबोधके प्रति हेतु नहीं हो सकते। अन्यथा अर्थात् विज्ञान विशेषके अभावमें भी केवल बाह्य अर्थकी सत्ता मात्रसे वासना प्रबोध होने लगेगा। तो इसमें अति विडम्बना बन जायगी। पिशाच अथवा परमाणु आदिक भी वासना प्रबोधके कारण बन बैठेंगे, क्योंकि अब विज्ञानविशेषके अभावमें भी मात्र बाह्यपदार्थोंसे वासना प्रबोधका अर्थात् वासना जगा देनेका कारण मान लिया गया है। ऐसा भी नहीं इष्ट है कि नील आदिक विज्ञानसे ही पीलादिक पदार्थोंकी वासनाका प्रबोध हो जाय और फिर उस वासना प्रबोधसे ही नील आदिक पदार्थोंका ज्ञान हो जाय, ऐसा माननेसे तो इतरेतराश्रय दोष हो जाता है। तब क्या है ? सो सुनो ! नीलादिक ज्ञानका अधिपति है चक्षु आदिक जन्य निर्विकल्प ज्ञान, सो उस निर्विकल्प ज्ञानके अनन्तर होने वाले जो विज्ञान हैं, जो नील आदिक पदार्थके ज्ञानको उत्पन्न करते हैं वे हैं वहाँ उन पदार्थोंकी वासनाके जगाने वाले और उन वासनाओंका भी जगाना पूर्वभावी विज्ञानसे माना गया है। इस तरह अनादिकालकी यह वासना नदीमें गिरा हुआ जीव अथवा यह विज्ञान प्रवाह इस समस्त ज्ञानसमूहका प्रतिबोध करता चला आया है। तब इन बाह्य पदार्थोंसे क्या रहा प्रयोजन ? एक विज्ञानमात्र ही तत्त्व है। इन बाह्य पदार्थोंको मान करके भी विज्ञान तो मानना ही पड़ेगा, क्योंकि विज्ञानके बिना नील आदिक पदार्थों का व्यवहार भी सिद्ध नहीं हो सकता। तो कोई पुरुष बाह्य पदार्थोंका सत्त्व माने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसे भी विज्ञान मानना ही पडेगा और फिर देखिये ! वह विज्ञान यदि है और बाह्य पदार्थ कुछ भी नहीं है तो स्वप्न आदिककी दशाओंमें उन पदार्थोंके विज्ञानका व्यवहार बन जाता है। तब बाह्य पदार्थोंका ख्याल, लगावका हठ करना व्यर्थ है। विज्ञानके बिना काम न चलेगा और बाह्य अर्थ बिना काम होता रहेगा।

तत्र वृत्युपलब्धि हेतुकी भेदैकान्तपक्षबाधकता व हेतुकी निर्दोषता—जब विज्ञानवादका प्रवेश हो गया, तब बाह्य अर्थकी व्यवस्था करनेकी जिसकी इच्छा हुई ऐसे आप नैयायिक आदिकको भी केवल अदृष्ट मात्रके निमित्तसे विशेषणविशेष्यत्वका ज्ञान न मानना चाहिए क्योंकि विशेषणविशेषत्वज्ञानमें द्रव्य आदिकके ज्ञानकी तरह बाह्य अर्थ विशेषका विषयपना है इतना अवश्य समझना पड़ेगा। और फिर जब विशेषणविशेष्यभाव ज्ञानमें बाह्य अर्थविशेषकी आश्रयणीयता हो जानेपर अनवस्थिति हो जायगी, संयोग व संयोगियोंका अपना जो समवाय है, वह विशेषण विशेष्य भावरूप नहीं बनता। वह तो अपने सम्बन्धियोंसे भिन्न है तब अपने सम्बन्धियोंकी सिद्धिके लिए अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा रखेगा और वह अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा रखेगा। इस तरह अनवस्था दोष होगा, इस कारण विशेषण विशेष्यभाव जो कि संयोगी संयोग समवायके साथ माना जा रहा है वह अपने सम्बन्धियोंसे असम्बद्ध है सो सम्बन्धरूप नहीं हो सकता और जब यहाँ ही सम्बन्ध सम्भव नहीं होता तो समवायीकी फिर चर्चा ही क्या की जाय ? तो यों अनवस्था होनेसे संयोगीका संयोग जो कि संयोगियों से भिन्न है समवाय वृत्तिसे यह वहाँ ही है, यह व्यपदेश किस तरह बन सकता है ? वह ही संयोग तो मटकेमें दहीकी वृत्ति है अर्थात् दहीका रहना है, यही तो वृत्तिरूपसे संयोगको माना जा रहा है। लेकिन इसका निराकरण होगया, अतएव वृत्ति पाई जानेसे संयोगी व संयोग परस्पर अत्यन्त भिन्न नहीं है। सो हेतुमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं आता और न यह हेतु विरुद्ध है, क्योंकि सर्वथा भिन्न पदार्थोंमें कहीं भी एक का दूसरेमें रहना नहीं देखा गया है। इससे यह जो अनुमान है जो कि निर्दोष हेतुवों से सज्जित है वह भेद पक्षका बाधक है अर्थात् गुण गुणी, कार्यकारण आदिक परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं, इस प्रकारका भेदपक्ष यहाँ प्रमाणसे बाधित हो जाता है।

भेदैकान्तपक्षकी बाधकता व सदोषता—जब यह अनुमान भेदपक्षमें बाधा दे रहा है तब शङ्काकारके द्वारा कहा गया यह हेतु कि भिन्न प्रतिभास होनेके कारण गुण गुणी आदिकमें भेद है सो यह भिन्न प्रतिभासत्वात् हेतु कालात्ययापदिष्ट ही है, क्योंकि यह अनुमान बाधित हो गया और अनुमान बाधित ही नहीं किन्तु यह तो प्रत्यक्षसे भी विरुद्ध है। अवयव अवयवी आदिकमें जो भेद एकान्तकी बात कही जा रही है सो प्रत्यक्षसे ही वहाँ भेद नहीं मालूम होता, किन्तु उन अवयव अवयवी आदिकमें कथञ्चित तादात्म्य ही साक्षात्कारमें आ रहा है, इस कारण भिन्न प्रतिभासत्वात् यह हेतु प्रत्यक्ष बाधित है अनुमान बाधित भी है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कथंचित् तादात्म्य माननेपर वृत्तिविकल्पदोषोंकी अनापत्ति—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि इस प्रकारकी वृत्तिका दोष जैसा कि वर्णन किया गया है स्याद्वादियोके यहां भी उपस्थित होता है। जो अभी कहा गया कि उस अवयवीकी वृत्ति एक देशसे है या सर्वदेशसे है ऐसा ही विकल्प उठाकर स्याद्वादियोंके यहाँ भी दोष दिया जा सकता है कि इनके यहाँ अवयवी अवयवोंमें सर्वदेशसे है या एक देश से ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह प्रसंग अनेकान्तमें नहीं बताया जा सकता। क्योंकि वहाँ अवयव अवयवी गुण गुणी आदिकका कथञ्चित् तादात्म्य है तब वहाँ यह दोष नहीं उपस्थित करते हैं क्षणिकवादी जन जैसा कि क्षणिकवादी स्वयं यह मान रहे हैं कि ज्ञानका वेद्याकार और वेदकाकारसे तादात्म्य है क्योंकि वह अशक्य विवेचन है। वेद्याकार और वेदकाकार इन दोनोंसे अलग नहीं किया जा सकता इस कारण वहाँ यह विकल्प नहीं उठता कि वेद्याकार वेदकाकारोंका ज्ञानमें रहना क्या एक देशमे है या सर्वदेशसे है। और न वहाँ विज्ञानकी सावयवता और बहुपना भी आता अथवा अनवस्था दोष भी नहीं आता। तो जैसे इस क्षणिकवादी शंकाकारके यहाँ विज्ञानमें वेद्याकार वेदकाकारकी वृत्ति माननेपर भी दूषण नहीं उपस्थित करते उसी प्रकार अवयव अवयवीसे तादात्म्य रख रहे हैं अतएव अशक्य विवेचन है। यह अवयव है, यह अवयवी है ऐसा पृथक्करण नहीं किया जा सकता। एक घट बना है, घट तो अवयवी हुआ और उसमें भिन्न-भिन्न अणु अवयव हुए तो वहाँ यह भेदीकरण नहीं किया जा सकता कि यह तो अवयव है और यह अवयवी है। अवयवोंको थोड़ी देरको उठाकर कहीं अलग रख दें, अवयवी अलग पड़ा रहे, तो वहाँ कुछ भी भेद नहीं है। तो अवयव अवयवीका अशक्य विवेचनत्व होनेसे तादात्म्य है इस कारण वहां भी क्या एक देशसे अवयवी अवयवोंमें रहता है या प्रत्येक अवयवोंमें सर्वात्मक रूपसे रहता है अथवा अवयव अवयवीमें एक देशसे रहता है यह बिल्कुल उठाये जानेका कोई भी दूषण नहीं दिया जा सकता। ये क्षणिकवादी सर्वथा भेदमें जैसा दूषण दिया गया है उस प्रकार अवयव और अवयवी आदिकके कथञ्चित् तादात्म्यमें भी दूषण नहीं दे सकेंगे। यह दोष तो वहां ही आता है जहाँ सर्वथा भेदैकान्त मान लिया है। जैसे आत्मा गुणी है चैतन्य गुण है। तो अब गुण गुणीका तादात्म्य न मानकर वहाँ भी भेद मान लिया जाय तो यह दोष उपस्थित होता है कि वह चैतन्य आत्मामें एक देशसे रहता है या सर्व देशसे ? लेकिन जहाँ तादात्म्य माना गया है वहाँ रहनेके ये विकल्प उठाये ही नहीं जा सकते।

सामान्य, विशेषकी एकान्तता न होने स्याद्वादसिद्धान्तमें वृत्तिविकल्पका अनवकाश—अब और भी देखिये—जैसा कि कथञ्चित् तादात्म्यमें ये क्षणिकवादी बौद्ध जन वृत्ति विकल्पका दूषण न बता सकें उसी प्रकार वैशेषिक भी कथञ्चित् तादात्म्यमें वृत्ति विकल्पके दूषण अथवा विरोध आदिक दोष नहीं लगा सकते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, क्योंकि सामान्य विशेषों की तरह कथञ्चित् तादात्म्यमें वृत्तियोंके विकल्पका दूषण और विरोध आदिक दोषोंके उपालम्भका अवकाश नहीं है। देखिये जो अपर सामान्य माना गया है वह पृथक्करण बुद्धिका भी कारण है इसलिए भी वह विशेष इस नामको भी प्राप्त होता है। जैसे सत्त्व यह हुआ पर सामान्य क्योंकि सभी पदार्थ सत् है। अब उसके ही अन्दर द्रव्यत्व गुणत्व आदिक अपर सामान्य अथवा मूर्तत्व अमूर्तत्व आदिक अपर सामान्य या घटत्व पटत्व आदिक अपर सामान्य ये सब कुछ विशेषताको भी बतला रहे हैं क्योंकि सर्व पदार्थोंमें ये नहीं पाये जा रहे। इन कारण इनका नाम विशेष भी हो जाता है। यह बात निराकृत नहीं की जा सकती। यदि अपर सामान्यको केवल एक सामान्य रूप ही दिया जाय, वह तो मात्र सामान्य ही है किसी भी प्रकार वह विशेषरूप नहीं बनता, यों माना जाय तब अपर विशेषका अभाव हो जायगा। लेकिन अपर विशेषको शंकाकार वैशेषिकोंने स्वयं माना है। जैसे सत्त्व यह सामान्यरूप है और द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्व आदिक ये विशेषरूप है, क्योंकि विशेषरूप है, क्योंकि ये अल्प विषय वाले होते हैं। सामान्य महा विषय है और विशेष अल्प विषय वाले हैं विशेष कहते हीं उसे हैं जो कुछमें पाया जाय शेषमें न पाया जाय। तो यों द्रव्यत्व आदिक जो अपर सामान्य हैं वे अल्प विषय वाले हैं। सो वे अन्यकी व्यावृत्तिके कारण हैं अतएव विशेष नामको प्राप्त होते हैं। ऐसा स्वयं विशेषवादमें कहा गया है। जैसे घटमें घटत्व है तो उससे व्यावृत्त पटत्व भी है तो देखिये अपर विशेष बन गया ना। नहीं तो अपर विशेषका अभाव हो जायगा। इसलिए अपर सामान्यको मात्र सामान्यरूप ही नहीं कहेंगे। इसी प्रकार यदि अपर सामान्यको अपर विशेषरूप मान लिया जायगा तो अपर सामान्यका अभाव हो बैठेगा। यदि अपर सामान्यको सामान्य और विशेष दोनों रूप मान लिया जायगा तो अब देखिये—सामान्य और विशेषरूप इन दोनोंमें कथञ्चित् तादात्म्य मानना ही पड़ेगा क्योंकि वह अपर सामान्य सामान्य और विशेष दोनों रूप हो गया। तब उन दोनों रूपोंमें कथञ्चित् तादात्म्य सिद्ध हो ही गया है।

अर्थ सामान्य और विशेषका पृथक सत्त्व न होनेसे कथंचित् तादात्म्य के अभिमत द्वारा वस्तु स्वरूपकी व्यवस्था—शङ्काकार कहत है कि सामान्य और विशेषमें हम तादात्म्य कैसे मान लें और यह कहना कि उनके तादात्म्य मानना ही पड़ेगा यह बात कैसे बनेगी, क्योंकि सामान्य और विशेषरूपमें जो यह बात विदित होती है सो वह तो समवाय सम्बन्धके द्वारा हो जायगा। तादात्म्य माननेकी क्या आवश्यकता ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उन सामान्य विशेषोंका जो एक पदार्थ में समवाय माना है तो वह समवाय और है क्या चीज ? कथंचित् एक द्रव्यमें तादात्म्य है, सामान्य और विशेषका, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ समवाय नहीं है, क्योंकि वहाँ सामान्य ही उस अनुवृत्त और व्यावृत्त प्रत्ययका कारण बन रहा है। जैसे सत्त्व तो माना जा रहा है विशेषवादमें द्रव्य, गुण, कर्म आदिक सभी पदार्थोंमें, किन्तु द्रव्यत्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवल आत्मा आदिक ६ पदार्थोंमें है। गुण कर्म आदिकमें नहीं है। तो अब देखिये! यह द्रव्यत्व आत्मा आदिक समस्त ६ पदार्थोंमें है यह तो हो गया अनुवृत्तका ज्ञान और द्रव्यत्व गुण कर्मादिक पदार्थोंमें नहीं है यह हो गया व्यावृत्तका ज्ञान। तो यों अनुवृत्त और व्यावृत्तके ज्ञानका कारण होनेसे इस अपर सामान्यमें सामान्याकार और विशेषाकार इन दोनों ही आकारोंका मानना इष्ट ही है। उन दोनों ही आकारोंका किसी तृतीय पदार्थमें समवाय हो अथवा उन दोनों आकारोंका परस्परमें समवाय हो गया यह नहीं कहा जा सकता। जैसे कोई ऐसा सोच ले कि पदार्थ वहाँ तीन हैं सामान्य, विशेष और एक वह पदार्थ जिसमें सामान्य विशेष खुद किया जा रहा है और फिर सामान्य विशेष इन दोनोंका उस तीसरे पदार्थमें समवाय माना सो ऐसा नहीं है पदार्थ वह एक ही है। वह जाति दृष्टिसे सामान्यरूप है व्यक्ति दृष्टिसे विशेषरूप है। सो उन दो का किसी तीसरेमें समवाय माननेकी बात मिथ्या है इसी तरह कोई यह सोच ले कि दो ही पदार्थ हैं सामान्य और विशेष और उन दोनोंका परस्परमें समवाय है सो नहीं कहा जा सकता, जिससे कि उन ही की तरह अवयव अवयवी आदिकमें कथंचित् तादात्म्यरूप वृत्तिमें किसी प्रकारका दूषण बताया जा सके भेदैकान्तका पक्ष लेनेपर अब दूसरा भी दूषण सुनो! देखिये! अवयव आदिकसे अवयवी आदिकका अत्यन्त भेद यदि मान लिया जाता है तो उनमें देशका भी भेद होना पडेगा और कालका भी भेद हो जायगा। अर्थात् अवयवका देश भिन्न अवयवीका भिन्न अवयवका सम्बन्ध अन्य और अवयवीका सम्बन्ध अन्य इसी प्रकार गुण गुणीमें कार्य कारणमें विशेष और अभावमें सभीमें देशका भी भेद हो जायगा और कालका भी भेद हो जायगा, क्योंकि वहाँ तो अत्यन्ताभेद मान लिया गया है। इसी बातको अब समन्त भद्राचार्य अगली कारिकामें कहते हैं।

देशकालविशेषेपि स्याद्वृत्तियुतसिद्धवत् ।
समानदेशता न स्यान्मूर्तकारणकार्ययोः ॥ ६३ ॥

भेदैकान्तपक्षमें गुण गुणी आदिमें देशभेद व काल भेद हो जानेकी आपत्ति—जैसे कि पृथक् आश्रय वाले घट पट पदार्थोंका देश भेद और काल भेदसे रहना बन रहा है इसी प्रकार गुण गुणी अवयव अवयवी आदिकका भी भेद एकान्त माननेपर देशभेदमें और काल भेदमें उनका रहना बनेगा, किन्तु ऐसा तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। भेद एकान्तपक्ष माननेपर समानदेशता नही बन सकती है। कोई यह सोचे कि अवयव अवयवीका हम एक ही देशमें अवस्थान मान लेते हैं तो कहने मात्रसे बात न बन जायगी। जो मूर्त हैं अवयव अवयवी, कारण कार्य उन्हें सर्वथा भिन्न-भिन्न भी मानें और समान देशमें उनका रहना मानें यह बात नही बन सकती। अतः यह स्वीकार करना होगा कि गुण गुणी अवयव अवयवी कारण कार्य आदिक लक्षण भेदसे तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिन्न हैं लेकिन आश्रय आधार सत्व ये न्यारेन्यारे नहीं हैं।

अत्यन्त भेद होनेपर भी देशभेद कालभेद न होनेकी शंका और उसका समाधान—अब यहाँ नैयायिक शङ्का कर रहे हैं कि देखिये आत्मा और आकाश ये अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं ना सो अत्यन्त भिन्न पदार्थ होनेपर भी आत्मा और आकाशमें न तो देशभेद है न काल भेद है, अर्थात् जिस ही स्थानपर आत्मा है उस ही स्थानपर आकाश है। और जिस कालमें आत्मा है उस ही कालमें आकाश है, तो इनका देश और कालसे भेद नहीं रहता है इस कारण कार्य आदिकका यहाँ भेद सिद्ध नहीं होता जिससे कि पृथक उनका रहना कहा जाय। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकार की उक्त शङ्का संगत नहीं हैं कि आत्मा और आकाशका भी सत्त्व और द्रव्यत्व आदिक की अपेक्षा भेद नहीं है। जैसा सत्त्व आत्मामें है वैसा ही सत्त्व आकाशमें है। द्रव्य भी दोनों हैं। तो इस अपेक्षासे भेद न होनेके कारण आत्मा और आकाशमें अत्यन्ताभेद सिद्ध नहीं किया जा सकता। और इस ही प्रकार अब आत्मा और आकाशमें अभिन्न-देशता और अभिन्नकालताका भी विरोध नहीं कहा जा सकता। देखिये वैशेषिकोंके यहाँ भी समस्त मूर्तिमान पदार्थोंमें एकसाथ संयोग वृत्ति मानी गई है तब उन दोनोंका अत्यंत भेद न माननेसे देश और कालसे अभेदका विरोध न रहा और ऐसा अंगीकार करनेपर उस ही प्रकार जैसे कि आत्मा और आकाशके सम्बन्धमें अभेद अब मान लिया गया, अवयव अवयवी आदिकमें भी देश और काल दोनोंसे अभेद सिद्ध हो जाता है और ऐसा मान लेना यह कथञ्चित् अभेदको सिद्ध करने वाला बन जाता है। किन्तु ऐसा अभेद शङ्काकारको इष्ट नहीं है। क्योंकि उनके ही आगममें जो कहा है उसके विरुद्ध जाता है। यह बात उनके लिए अपसिद्धान्तकी बन जाती है। तब जिस कारण कि अवयव अवयवीमें, गुण गुणीमें, कार्य कारणमें भेद नहीं माना है शङ्काकारने तब अवयव अवयवी आदिकका अत्यंताभेद होनेसे भिन्न देश भिन्न काल रूपसे भी उनकी वृत्ति हो जानी चाहिए। जैसे घट और वृक्ष इनमें अत्यंताभेद है, तो देखिये भिन्न भिन्न देशोंमें पडे हुए हैं। तो जहां अत्यंताभेद होता है वहाँ वे भेद भी है, काल भेद भी है। घट बना किसी कालमें, वृक्ष बना किसी कालमें। उनमें वृक्ष कभी भी नष्ट हो जायगा, ऐसा तो नहीं है कि घटका उत्पाद विनाश वृक्षके उत्पाद विनाशके समयमें ही होता है। तो जैसे घट और वृक्षमें अत्यंताभेद होनेके कारण देश भेद और काल भेद है इसी प्रकार गुण गुणी आदिकमें भी भेद एकान्त मानने पर देशभेद और कालभेद बन बैठेगा। इस कारण भेद एकान्तका पक्ष युक्तिसंगत नहीं रहता।

वर्णादिकोंमें अत्यन्त भेद न होनेसे हेतुमें व्यभिचारका अनवकाश—शङ्काकार कहता है कि आपके दिये गये हेतुका वर्णादिकके साथ व्यभिचार आता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। जैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श ये अत्यंत भिन्न हैं फिर भी न इनमें देशभेद है न काल भेद है। ऊपर यह हेतु बताया गया है कि जहां अत्यंत भेद माना जाय वहाँ देश भेद और कालभेद दोनों मानने पड़ेंगे लेकिन यहाँ वर्णादिकमें भेद है फिर भी देशभेद और कालभेद नहीं हैं। तब यह हेतु सदोष हो गया। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि रूप, रस, गंध स्पर्श आदिकमें भी भेद एकान्त माना नहीं गया है क्योंकि सभी लोग देख रहे हैं कि वर्ण, रस, गंध, स्पर्श ये अपने आश्रयभूत पदार्थसे भिन्न जगह नहीं रह रहे हैं। उनका भेद नहीं देखा गया, न आगममें माना गया है। तो जैसे वर्णादिकका अपने आधारसे भेद नहीं देखा गया, न माना गया, इस कारण अत्यंत भेदत्वात् इस हेतुका देशभेद कालभेद सिद्ध करनेमें किसी प्रकारका दूषण नहीं आता है। तो गुण गुणी जब अत्यंत भिन्न मान लिये जायेंगे तो इनका देश भेद और काल भेद हो जायगा जो कि अनिष्ट है। अतः भेद एकान्तका आग्रह करना उचित नहीं है। यहाँ शंकाकारका अनुमान प्रयोग था कि सर्व ही तत्त्व परस्पर अत्यंत भिन्न हैं, क्योंकि भेद प्रतिभास होनेसे। इस सम्बन्धमें यह कहा जा रहा है कि देश कालकी अपेक्षासे उनमें भेद हो जाना चाहिए। इसपर शंकाकारने आपत्ति दी कि अत्यंताभेद होनेपर भी देशकालकी अपेक्षा भेद नहीं होता और दृष्टान्त दिया है वर्णादिक। उसका निराकरण किया गया कि वर्णादिकमें एकान्ततः भेद नहीं माना गया है। वर्णादिक अपने आश्रयभूत द्रव्यसे अभेद रूपसे है और वर्णादिक भी परस्पर अभेदरूपसे है इस ही प्रकार इन वर्णादिकके साथ इस तरह पक्षकृत गुण, गुणी आदिकके साथ एक देशरूप से भी व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि यदि यों व्यभिचार किया जाने लगे तो जब अनुमान प्रयोग किया शंकाकार नैयायिकने कि पृथ्वी आदिक किसी बुद्धिमान कारण के द्वारा बनता रहता है कार्य होनेसे तो इसका जो कार्यत्व हेतु है वह पक्षके एक देश तृण पर्वत आदिकमें कार्यपना होकर भी किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है यह सिद्ध नहीं होता सत्त्व होनेसे तृण पर्वत आदिकके साथ वह व्यभिचार आ जाता है। तो इस तरहका स्वयं शंकाकारका अनिष्ट प्रसंग हो जायगा।

कार्यकारण आदिके समान देशकालत्व स्वीकार करनेपर अवयव अवयवीकी समानदेशकालताके अभावका प्रसंग—यदि यह कहा जाय कि कार्य कारण आदिकको हम समान देश और समान कालमें स्वीकार करते हैं। क्योंकि सिद्धान्त इस ही प्रकार बना है तब सुनो कि इस नैयायिकके यहाँ फिर अवयव अवयवी का समान देशमें रहना न हो सकेगा मूर्तिमान होनेसे गधा और ऊंटकी तरह। जैसे ये दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं तो एक ही जगह दोनों तो नहीं समा सकते। दो मूर्त पदार्थों का समान देशमें रहनेका विरोध है। शंकाकार कहता है कि देखिये आत्मा और कर्म ये दोनों एक ही देशमें रह रहे हैं फिर विरोध कैसे है कि मूर्त पदार्थोंका एक देशमें रहना न बन सके। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि अपना ही अवयवरूप देश जिसके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसे वहाँ दो अवयवी माने गए हैं। अतः यह दोष नहीं दिया जा सकता। तंतु और कपड़ेमें भी अपने अवयवरूप दोष होनेसे उनमें भी समान दोषपनेका अभाव होगा। ऐसा दोष नहीं दिया जा सकता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि परमाणु और द्वाणुक स्कंध इनमें तो भिन्न देशपनेका अभाव है इस कारण समानदेशपना जो आप बतला रहे हैं वह नहीं हो सकता। अब शंकाकार कहता है कि देखिये—जो दो अणु वाला स्कंध है वह तो परमाणुका अवयव है और परमाणु होता है निरंश सो उसके अन्य आश्रयमें स्थित होना होता ही है। इस कारणसे परमाणुका और द्वाणुकका समान देशमें रहना नहीं होता इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि उस प्रकार तो लौकिक देशकी अपेक्षासे समानदेशपना माननेका प्रसंग आता है और वह मूर्त पदार्थोंमें होता नहीं। जो प्रत्यक्ष कार्य कारण रूपसे नजर आ रहे हैं मूर्त पदार्थ उनमें समान देश-पना नहीं बनता। अतएव कार्य कारणके सम्बन्धमें जो दूषण दिया है वह युक्त ही है।

अवगाहन शक्तिसे भिन्न पदार्थोंमें भी परस्पर अवगाहका अविरोध—शंकाकार कहता है कि मूर्त दो पदार्थोंका जब समान देशमें रहना न बना तो फिर अनेकान्तवादियोंके यहाँ जो ऐसा कहा गया है कि एक आकाश प्रदेशमें असंख्येय परमाणुओंका अवस्थान है फिर इस कथनका विरोध कैसे न हो जायगा? इस शंका के उत्तरमें स्याद्वादीजन कहते हैं कि हम तो वहाँ उस प्रकारके अवगाहकी स्थिति होनेसे एकत्व परिणाम मानते हैं अर्थात् उन सब परमाणुओंका स्कंध रूपसे एकत्व है अतएव विरोध नहीं आता। एक ही मूर्तिमान द्रव्य एक ही प्रदेशमें ठहरा हुआ हो इसमें कुछ भी विरुद्धताकी बात नहीं है अथवा ऐसी अवगाहन शक्ति है कि जहाँ एक पदार्थ हो वहाँ अनेक पदार्थ भी ठहर सकते हैं। जैसे किसी घड़ेमें जल डाला फिर नमक डाल दिया फिर भष्म डाला, फिर उनमें अनेक सूइयाँ गपो दिया तो इस प्रकार एक देशमें कितने ही पदार्थोंका अवस्थान सम्भव हो गया। संयोग मात्रसे स्थित रहने वाले और अपने व्यक्त एकत्व परिणामके लिए उत्सुक नहीं है ऐसे उन स्कंधोंका अनेक आकाश प्रदेशोंमें अवस्थान हो जाय अवगाहन विशेष होनेसे तो इसमें तो यह ही बात सिद्ध हुई कि आकाशका लक्षण अवगाह है। सो ये सभी पदार्थ एक आकाशमें ठहर गए। इसमें स्याद्वादियोंके सिद्धान्तमें कुछ भी विरोध नहीं आता। अब यहां नैयायिक एक प्रश्न कर रहे हैं और उसका उत्तर स्वामी समंतभद्राचार्य दे रहे हों। इन दोनों बातोंका निरूपण अगली कारिकामें कहा जा रहा है।

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्युक्तः स संबन्धो न युक्तः समवायिभिः ॥ ६४ ॥

द्रव्य गुण आदिमें सामान्य विशेष आदिक समवायकी असिद्धि—यहाँ शङ्काकार नैयायिक कह रहे हैं कि अवयव आदिकका आश्रयभाव और अवयवी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिकका आश्रयीभाव होनेके कारण उन समवाय कारणोंमें, तंतु पट आदिकमें भेद नहीं रहता। यद्यपि परमार्थभूतः अवयव अवयवी गुणगुणी आदिकमें भेद है फिर भी आश्रय आश्रयी भावके कारण उनमें भेद स्वीकार नहीं किया गया। अतः भेदपक्षमें जो दोष बताये जा रहे हैं वे दोष युक्त नहीं बैठते। आचार्य कहते हैं कि शङ्काकारकी यह आशङ्का युक्त नहीं है, समवायरूप सम्बन्ध समवायीके साथ असम्बद्ध होनेके कारण बनती नहीं है। तब सभी कारण, कार्य, उपादान, उपादेय, अवयव, अवयवी सर्वथा भिन्न हैं, तो उनमें किसी प्रकार समवाय सम्बन्ध भी नही कहा जा सकता। शङ्काकार कहता है कि समवायके द्वारा कार्य कारण आदिकका परस्परमें प्रतिबंध हो गया। इसलिये वहाँ भेद नहीं नजर आता और जिससे कि देशकाल आदिकके भेदसे उनका रहना बने देशकालकी अपेक्षा उनमें एकत्व है यह बताकर ही तो भेदका निराकरण किया जाता था लेकिन बात वहाँ यह है कि कार्यकारण आदिकमें वस्तुतः भेद है फिर भी परस्पर प्रतिबन्ध सम्बन्ध होनेके कारण देशकालके भेदसे उनका रहना नहीं होता, इस शङ्काके उत्तरमें पूछ रहे हैं कि भला यह बतलाओ कि फिर तो वह समवाय समवायीमें जो रहता है तो क्या अन्य समवायोंसे जो रहता है या स्वतः ही रह लेता है ? यदि कहो कि समवायी कारणोंमें समवाय अन्य समवायके द्वारा रहता है तब तो यहाँ अनवस्था दोषहोगा। समवायका समवायीमें रहना सिद्ध करने चले वहाँ अन्य समवायकी जरूरत पड़े तब उस अन्य समवायका समवायी अथवा समवायमें रहनेके लिए अन्य समवायकी आवश्यकता होगी। इस तरह आगे बढ़ते जाइये कहीं भी विराम न हो सकेगा।

समवायकी स्वयं वृत्तिकी उपपत्तिकी मीमांसा—यदि कहो कि समवायी कारणोंमें वह समवाय स्वयं ही रहा करता है तो तब स्वयं रहने लगे तो द्रव्यादिकमें उस ही प्रकार उपपत्ति बने फिर समवायकी बात कहना व्यर्थ है और तब कार्य कारण आदिकमें सम्बन्ध कैसे बन सकेगा ? यदि यह माना जाय कि समवाय अनाश्रित है इस कारणसे वहाँ अन्य सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा नहीं होती। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि फिर भी वह समवाय तो असम्बद्ध ही रहा। समवायके साथ समवायका सम्बन्ध रहा फिर कैसे द्रव्यादिकके साथ वह समवाय रह सकेगा ? जिससे कि पृथक् सिद्ध न हो ? इससे यह घटाया जाने वाला सम्बन्ध युक्त नहीं है। समवाय के साथ समवाय सम्बन्ध घटित नहीं होता। और ऐसा हो नहीं सकता कि जो स्वयं सम्बन्धसे रहित है ऐसा समवाय सम्बन्ध समवायीके साथ बन सके। जिस समवायका समवायीके साथ कोई बन्धन नहीं है वह समवाय समवायीमें कैसे पहुंचेगा ? अन्यथा तो समवायीके साथ अप्रतिबद्ध होकर भी समवाय सम्बन्ध अगर मान लिया जाता है तब तो काल आदिकके साथ भी सम्बन्ध बन जाना चाहिए। क्योंकि जैसे समवायमें वह अप्रतिबद्ध है उस ही प्रकार काल आदिकमें भी वह समवाय अप्रतिबद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। सम्बद्ध होता हुआ ही अपने सम्बन्धियोंके साथ संयोग सम्बन्ध देखा गया है। संयोगका अपने सम्बन्धियोंके साथ कथञ्चित् तादात्म्य सम्बन्ध है क्योंकि उनका संयोग परिणाम हुआ है।

विशेषण विशेष्यभाव आदि कल्पनाओंसे भी समवायके समर्थनका अभाव---शङ्काकार कहता है कि समवाय भी तो विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्धके कारण समवायसे सम्बद्ध हो जायगा। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का युक्त नहीं क्योंकि उसका भी अन्य विशेषण विशेष्य भावसे अपने सम्बन्धियोंके साथ सम्बन्ध माननेपर अनवस्था दोष आता है और अन्य विशेषण विशेष्यभावके बिना स्वयं ही अपने सम्बन्धियोंसे उसका सम्बन्ध मान लेते हैं तो फिर उस सम्बन्धपनेका विरोध हो जायगा। तब कोई प्रतिबन्धकी बात ही न रही तो कैसे समवायका समवायीमें सम्बंध बन जायगा ? यदि कहो कि समवायीका समवायके साथ कथञ्चित् तादात्म्य है तब तो ठीक ही बात पर आ गए कार्य कारण आदिकका भी फिर कथञ्चित् तादात्म्य ही मान लो। फिर समवाय अथवा सत्ता सामान्य आदिक अन्य पदार्थान्तर का नाम व कल्पना करनेसे लाभ क्या ? वहाँ कोई फल नहीं प्राप्त होता। यदि कहो कि पहिले तो पदार्थ था नहीं, कोई कार्यका आश्रय था ही नहीं और सत्ताके सम्बन्धसे कार्यकी उत्पत्ति मानी है इसलिए सत्ता सामान्यकी कल्पना करना सफल ही है, ऐसा यहां नैयायिक शङ्काकार कह रहे हैं। उसके समाधानमें कहा जा रहा है कि जो अनुत्पन्न है कार्य उस कार्यमें सत्ताका समवाय कैसे हो सकता है तथा जो कार्य उत्पन्न हो गया उसमें सत्ताका समवाय मानना व्यर्थ ही है। जहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं उस बातके माननेसे लाभ क्या है ? अरे स्वरूपका लाभ ही तो स्वरूप की सत्ता कहलाता है। जो कार्य उत्पन्न हो गया जिसके स्वरूपका लाभ मिल गया तो वह तो अपने स्वरूपमें सत् है ही। तो स्वरूप लाभ जिसका है पहिलेसे ही उसमें कुछ सम्बन्ध आदिक [मानना स्वरूप लाभके लिए व्यर्थ है और यदि वह स्वरूपसे असत्‌में सत्ताका सम्बन्ध मान लिया जाता है तो यहाँ बड़ी विडम्बना बन जायगी। फिर तो गधेके सींग आदिकमें भी सत्ताका सम्बन्ध हो जाना चाहिए। तो इस कारण कार्य कारणको सर्वथा भिन्न माननेपर, द्रव्यापेक्षया भी उनमें एकत्व न माननेपर कार्य कारणकी विधि नहीं बन सकती। कारण है पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य और कार्य है उत्तर पर्याय संयुक्त द्रव्य तो इस उपादान उपादेय तत्त्वका आश्रय तो वह एक ही रहा। अब अवस्थाके भेदसे उन कार्य कारणमें भेद है और कथञ्चित कार्य कारणमें अभेद है। वहाँ भेद एकान्तका पक्ष करना युक्तिसंगत नहीं है।

कार्योत्पादके सम्बन्धमें सत्त समवाय वाला शंकाकारका सिद्धान्त—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शङ्काकार कहता है कि उत्पन्न हो रह' हुआ ही कार्य सत्ताका समवायी माना जाता है क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है कि पहिले असत् हुए कार्यमें सत्ताका समवाय होना इस हीका नाम उत्पाद है। कोई यह कहे कि सत्ता समवायका नाम है उत्पाद है उतना ही रहना तो उसमें प्राग असत: यह विशेषण क्यों लगाया जाता है ? सो सुनो ! प्राग असत: यह विशेषण न लगे तो कार्यकारणकी सयुक्तिक व्यवस्था नहीं बताई जासकती केवल समवायके सत्ता सामान्यकी तरह नित्यपना होनेसे 'उत्पाद है' ऐसा ज्ञान व कथन नहीं बनता। अत: मान लेना चाहिए प्राक असत्के सत्ता समवाय, क्योंकि सत्ता सम्बन्धी ही कोई पदार्थ या समवाय ज्ञान व अभिधानका हेतु नहीं बन पाता है। यहाँ शङ्काकार कहता है कि उत्पद्यमान ही कार्य सत्ताका समवायी माना गया है क्योंकि हमारे सिद्धान्तमें यह वाक्य है कि पहिले असत् कार्यका ही सत्ता समवाय होना उत्पाद कहलाता है केवल समवायके सत्ता सामान्यकी तरह नित्यता होनेसे 'उत्पाद है' इस प्रकारके ज्ञान और शब्दका कारण नहीं बनता है, ऐसा नैयायिक अपना सिद्धान्त रख रहे हैं, उसकी मीमांसाके लिए समन्तभद्राचार्य कारिका कहते हैं।

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः।
अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः ॥ ६५ ॥

सामान्य और समवायको स्वतन्त्र पदार्थ माननेपर दोषापत्ति— सामान्य और समवाय एक एक करके प्रत्येक पदार्थमें समाप्त हो जाते हैं तब आश्रयके बिना फिर सामान्य और समवाय बाहर कहां रहेगा और इस तरह फिर अनित्यकार्य में कैसे सत्त्वका वर्तन रहेगा ? वैशेषिकोंके यहाँ परमार्थसे सामान्यका आश्रितपना होना व समवायका समवायियोंमें आश्रितपना होना उपचारसे माना गया है, समवाय का समवायीमें परमार्थत: प्रतिबंध नहीं है, सम्बन्ध, समवाय, बन्धन नहीं है तब तो असम्बद्धता ही कहलायगी। समवायका उपचारसे आश्रितपना माना है समवायीमें तब अप्रतिबद्धपनेका ही आश्रय करके समवायका असम्बद्धपना ही सिद्ध होता है। समवायका आश्रितपना होनेमें जो उपचार किया गया है उसका निमित्त है 'समवायके होनेपर इसमें यह है ऐसा जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान' यह है उपचारका कारण, यहाँ वैशेषिक सिद्धान्तकी एक वार्ता रखी है कि वैशेषिक सिद्धान्तमें समवाय परमार्थत: पदार्थमें सम्बद्ध नहीं है किन्तु उसका उपचारसे सम्बन्ध माना जाता है। तब परमार्थ से समवायका सम्बन्ध रहा नहीं। ऐसा जो मानते हैं उनके सिद्धान्तमें प्रत्येक नित्य द्रव्यमें सामान्य और समवाय भी असम्भव हो गए। फिर उत्पाद और विनाशवान पर पदार्थोंमें याने अनित्य कार्योंमें कैसे उनकी वृत्ति रहेगी ? किसी ही एक पदार्थमें नित्य आत्मामें आश्रयभूतमें सर्वरूपसे सामान्य और समवाय परिसमाप्त हो गया है। अब उत्पद्यमान घट आदिक प्रदेशमें पहिले न था ऐसा नैयायिक कहते हैं तब वहाँ यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक देशसे नहीं रहता या सर्व देशसे नहीं रहता, ऐसा विचार करनेपर वहां यह सिद्धान्त सङ्गत नहीं बैठता है। यदि सर्व आत्मासे पूर्व आधारका परित्याग नहीं कर रहे तब कैसे उस सामान्यके विषयमें यह कहा जायगा कि वह उस प्रदेशमें पहिले न था, अन्यथा सामान्य और समवायका अभाव हो जायगा। यदि कहोकि एक देशसे संबंध को प्राप्त नहीं होता तो यह भी कथन ठीक नहीं आता कि सामान्य और समवायमें अंश नहीं माना गया है। यदि कहो कि उत्पत्तिके बाद उत्पन्न हो रहे प्रदेशमें स्वयमेव ही वह सामान्य और समवाय हो जायगा, क्योंकि नित्य द्रव्य आत्मा आकाश आदिक में वह अपना परिचय कराने वाला होता है और आश्रयके विनाशपर नष्ट नहीं होता नित्य होनेसे, तब प्रत्येकमें परिसमाप्त है, यह बात फिर कहाँ रही ?

सर्वत्र व्यापक सत्त्व सामान्यकी सिद्धिका शङ्काकारका निष्फल प्रयास शङ्काकार कहता है कि देखिये ! सत्ता सामान्य द्रव्य, गुण कर्मादिकमें प्रत्येकमें परिसमाप्त हो जाता है, क्योंकि सत् प्रत्ययकी अविशेषता है। सत्तासामान्य है सब जगह क्योंकि सत्त्व प्रत्ययका कहीं विच्छेद नहीं होता। सम-ाय भी सब जगह है, समवायी पदार्थका भी सदा काल विच्छेद नहीं है, क्योंकि समवायी पदार्थ भी नित्य है परन्तु जहाँ जन्म और विनाश होता है ऐसा किन्हीं पदार्थोंका उत्पन्न हो रहे प्रदेशमें उत्पन्न होने वाले पदार्थका सत्ता समवायीपना सिद्ध होता है अर्थात् वहाँ उन कार्योंमें सत्ताका समवाय हो जाता है। कार्यका उत्पाद और समवाय अथवा निष्ठा और सम्बन्ध एक समयमें है। जिस ही समयमें कार्यका उत्पाद है उस ही समयमें समवाय है। अतः प्रकृत दूषण यहाँ नहीं आते। सत्ता और समवायका पहिले असत्त्व न होनेसे उस कार्योत्पादके प्रदेशमें सत्ता और समवायका अन्यसे आगमन होना न तो सर्वात्मा माना है, न एक देशसे माना है और पीछे अर्थात् उत्पन्न होने वाले प्रदेशके पश्चात् होना माना नहीं गया है क्योंकि सत्ता और समवाय सदा नित्य है। ऐसी शङ्काकारकी शङ्का भी युक्तिसङ्गत नहीं बैठती। सर्वगत सामान्यका, समवायका जो कि एक माना गया है उसका अपने आश्रयमें प्रत्येकमें परिसमाप्त होना असम्भव है। अन्यथा सामान्य और समवाय यह पहिले बन जायगा जैसे कि आश्रयका स्वरूप। ऐसा भी नहीं कह सकते कि सामान्य और समवायका सभी जगह अविच्छेद है इसलिए एकत्व है, उनका अविच्छेद असिद्ध है। प्रागभाव आदिक अनित्य कार्योंमें सत्का समवाय असम्भव होनेसे विच्छेद पाया जाता है।

सत्त्व व असत्त्वमें अविनाभावित्व होनेसे सत्त्वैकान्तके पक्षकी असमीचीनताकी घोषणा—प्रागभाव आदिककी सर्वथा भाव विशेषयता होनेसे वहाँ उनका विच्छेद न होगा। यदि ऐसा कहो तो अभाव भी सर्वगत और एक हो जायगा। फिर सभी जगह असत् प्रत्ययकी अविशेषता और अविच्छेदकी अविशेषता हो जायगी। जैसे कि द्रव्यादिकमें सत् प्रत्यय सामान्य रूपसे पाया जाता उसी प्रकार पररूपसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत् असत्का बोध भी पाया जाता है और जैसे अभावका सदैव भावधीनपना है उसी प्रकार सत्ताभावका अभावाधीनपना है। तो यदि अभाव है तो वहां किसीका सद्भाव है तब अभाव है और यदि सद्भाव है तो किसीका अभाव है तब ही उसका सद्भाव रह सकता है। यही उस अभावके अविच्छेद न होनेका कारण है। जैसे माना कि सर्वत्र सद्भाव है उसी तरह मान लीजिए कि सर्वत्र अभाव है। सद्भाव भी समस्त पदार्थोंमें निरन्तर है और अभाव भी समस्त पदार्थोंमें निरन्तर है, क्योंकि पररूपसे असत् हो वहाँ ही तो सद्भावकी प्रतीति होती है। जैसे घड़ेका सद्भाव है। जब तक घड़ा है, सत्का सद्भाव है अथवा अन्य कुछ भी बने उस मिट्टीका सदा सद्भाव है तो उस घड़ेके सद्भावके साथ घड़ेको छोड़कर अन्य जगतमें जितने भी पदार्थ हैं उन समस्त अन्य पदार्थोंका अभाव भी निरन्तर है। अर्थात् घडेमें घटपना सदाकाल है तो अघटपनेका अभाव भी सदाकाल है। क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो सर्व पदार्थों में सांकर्यका प्रसंग होगा अर्थात् सब एकमेक हो जायेंगे। घडेमें जैसे घड़ेका सद्भाव है इसी तरह कपडे आदिकका अभाव भी न रहे तो अर्थ यह होगा कि घडेमें कपडेका सद्भाव हो गया फिर घड़ा क्या रहा ? तो जैसे सद्भाव सदाकाल है उसी प्रकार अभाव भी सदाकाल रहता है। तो यह ही यों कहते हो कि सत्ताका विच्छेद नहीं है। सत्ताका भी विच्छेद नहीं है और असत्ताका भी विच्छेद नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो सब पदार्थ एकमेक हो जायेंगे। फिर वहाँ अभावमें विशेष व्यवस्था न की जा सकेगी कि यह घट है यह पट है क्योंकि अब तो सब एकमेक हो गए। यह चीज अमुक ही है ऐसी व्यवस्था तब बनती है जब यह स्वीकार किया जाता है कि यह चीज अपने स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है और जैसे स्वरूपसे है। यह बात सदा बनी रहती है इसी प्रकार "पररूपसे नहीं है" यह बात भी सदा बनी रहा करती है।

सत्त्वैकत्ववादीकी अभावविरोधमें एक विस्तृत शंका—शंकाकार कहता है कि यदि अभावका एकत्व माना जायगा अर्थात् अभावको एक माना जाय तो कार्यकी उत्पत्तिके समय प्रागभावका अभाव हो गया सो तब प्रध्वंसाभाव आदि सभी अभावोंका अभाव हो जायगा याने अभाव तो एक रूप माना, सो जब एक रूप माना तब कार्य उत्पन्न हो रहा है कार्यकी उत्पत्ति होनेपर प्रागभावका अभाव हो गया और प्रागभावका अभाव होनेपर प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभावका भी अभाव हो गया फिर पदार्थ अनन्त हो जायेंगे। सर्वरूप हो जायेंगे। और अस्वरूप हो जायेंगे। अभावको तो अब मान लिया एक। तो जिस समय प्रागभावका अभाव हुआ तो अभाव जब एक है तो बाकी तीन अभावोंका भी अभाव हो गया प्रागभाव कहते हैं कार्य उत्पन्न होनेसे पहिले कार्यका अभाव रहना। जैसे घड़ा बननेसे पहिले मृत्-पिण्डकी हालतमें घडेका अभाव रहना। प्रध्वंसाभाव कहलाता है कि जो चीज वर्तमानमें है उसका अभाव हो जाना। जैसे घडेसे खपरियाँ बननेपर घडेका अभाव हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाना इतरेतराभाव होता है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव रहना। घडेका कपडेमें अभाव है, कपडेका गडेमें अभाव है। अत्यन्ताभाव कहते हैं उसे कि एक वस्तुमें अन्य वस्तुका त्रिकाल अभाव रहना। कभी भी एक पदार्थ दूसरे पदार्थरूप न हो सकेगा। तो अब यहाँ अभावको मान लिया एक तो प्रागभाव न रहे तब पन्य अभाव भी न रहेंगे। जैसे मृत्पिण्डमें घट उत्पन्न हो गया तो घड़ा उत्पन्न होनेपर यह तो कहा जायगा कि घडेके प्रागभावका अभाव हो गया। घडेका प्रागभाव है मृत्पिण्ड। घड़ा पहिले न हो उसीको कहते हैं घडेका प्रागभाव तो मृत्पिण्डका अभाव तो हो ही गया। तो यों जब प्रागभावका अभाव हो गया और अभाव है एक ही तो सभी प्रकारके अभावोंका अभाव हो गया। तो देखिये कैसी आपत्ति आती है कि प्रागभाव के मिटनेपर प्रध्वंसाभाव भी मिट गया तो अब पदार्थ मिटनेपर प्रध्वंसाभाव भी मिट गया तो अब पदार्थ अनन्तकाल तक रहना चाहिए क्योंकि अब पदार्थका प्रध्वंस तो माना नहीं। इसी प्रकार इतरेतराभाव न मानें तो सर्व एकमेक हो जायगा क्योंकि एकका दूसरेमें अभाव तो रहा नहीं। इसी तरह अत्यंताभाव न मानेंगे तो कोई स्वरूप ही न रहेगा। तो जब एक द्रव्यमें जीवमें पुद्गल अणुका त्रिकाल अभाव है यह माना नहीं तो अर्थ यह हो गया कि न परमाणुका स्वरूप रहा न जीवका स्वरूप रहा। तो यों अनेक विडम्बनायें बन जायेंगी। इसी प्रकार जब प्रध्वंसका अभाव हो गया याने घड़ा फूट जानेपर प्रध्वसाभाव हुआ था लेकिन खपरियोंसे पहिले और पश्चात् अगर प्रध्वंसका अभाव हो गया तो इसका अर्थ यह रहा कि जो उत्पन्न नहीं हुआ है कि इसके प्रागभावका भी अभाव हो गया याने घड़ा बननेसे पहिले प्रध्वंसा-भावका अभाव है। एक अभाव होनेपर बाकी सब अभाव भी मिट जाते हैं। ऐसी बात यहाँ कही जा रही है। तो इसके मायने है कि घट और अनादि कालसे ही रहना चाहिए और पहिले पीछे और एकमें दूसरा नहीं ये सारे विशेषण भी नहीं बन सकते क्योंकि अभाव एक है। जैसे प्रागभाव कि कार्यका पहिले अभाव है। प्रध्वंसाभाव कैसे हुआ कि कार्यका बादमें अभाव होता है। इतरेतराभाव कैसे हुआ कि एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका अभाव है। अत्यन्ताभाव कैसे हुआ कि एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका अभाव है तो यह विशेषण भी अभावके साथ न बन सकेगा। क्योंकि अभावका अब अभेद मान लिया, बिना विच्छेदके मान लिया, ऐसा नैयायिक शंका करते है।

अपेक्षावश भाव व अभावकी सर्वथा समानता दिखाते हुए उक्त शङ्का का समाधान—अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि जैसे अभावको अविच्छिन्न माननेपर आपत्ति दे रहे हो तो इसी प्रकार शङ्काकारके यहाँ भी बताये गए सत्त्वको एक माननेपर और समवायको एक माननेपर किसी भी पदार्थका सत्ता समवाय होने पर सब ही पदार्थोंमें सता समवाय क्यों नहीं हो जाता ? शंकाकार यहाँ यह कह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा था कि यदि अभावको एक मान लोगे तो प्रागभावका अभाव होनेपर सारे पदार्थ एकमेक हो जायेंगे अथवा अनन्त हो जायेंगे, तो यहाँ भी यह बतायें कि सत्ताको भी एक माननेपर और समवायको भी एक माननेपर फिर किसी पदार्थमें अगर सत्ता आये तो सभीमें क्यों न आ जायगी। शंकाकार सत्ताको एक मान रहा है। सारी दुनियामें सत्त्व एक है और उस सत्त्वका जिस जिसमें सम्बन्ध होता जायगा वह पदार्थ सत् होता जायगा। शङ्काकारके मतके अनुसार आत्मा आकाश द्रव्य मन गुण सभी कुछ यह स्वयं नहीं है किन्तु इसमें सत्ताका सम्बन्ध होता है तब यह पदार्थ सत् कहलाता है। और वह सत्ता एक है। जैसे कि अनेकोंको यह शंका हो सकती कि यह टेबिल रखी और इसके चार हाथ दूर पर संदूक रखा है तो टेबिल और संदूक के बीचमें सत्ता तो किसीको भी नजर नहीं पड़ती। और शंकाकार यह कहता है कि सत्ता एक है सर्वव्यापक है, उसका जिस जिसमें समवाय बने वे वे पदार्थ सत् कहलाते हैं तो इस प्रकार सत्ताको एक मान रहे। तो जब सत्ता एक है तो सारे पदार्थोंमें जब कि पदार्थ उत्पन्न हुआ, उसमें जैसी सत्ता आयी तो एकदम सब पदार्थोंकी सत्ता क्यों नहीं हो जाती याने एक कार्य बननेपर अनन्तानन्त कार्य जो भूत भविष्यमें होनेको हैं, हो बैठें। सो ऐसा क्यों नहीं होता ? यदि शंकाकार यह कहे कि सर्व पदार्थोंमें सत्ताका समवाय माननेपर पदार्थकी उत्पत्तिके पहिले भी प्रध्वंस के सम्बन्धमें भी वह सद्भाव बन बैठेगा। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि अभावान्तरमें भी अत्यन्त सत्त्व सिद्ध होनेसे फिर प्रागभाव आदिक भेदकी व्यवस्था क्यों न बन जायगी ? यदि यह कहोगे कि प्रागभाव आदिकमें तो ज्ञान हो रहा है कि घड़ा पहिले न था। घड़ा बादमें नहीं है। घडेमें कपड़ा नहीं है आदिक ज्ञान होनेसे अभावमें चार प्रकारकी व्यवस्था बन जाती है तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर सत्ताके समवायका भी इस तरह भेद व्यवस्था बन जाय। वहाँ भी कह सकते हैं कि प्रध्वंसके पहिले कार्यका सत्ता समवाय असिद्ध नहीं है प्रागभावके बाद अर्थात् प्राग-भावका अभाव होनेपर कार्यका सत्ता समवाय असिद्ध नही है। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें इसमें यह नहीं है इस प्रकारका ज्ञान विशेष असिद्ध नहीं है तब फिर सत्ता भी अनेक बन जाय और समवाय भी अनेक बन जाय।

भावस्वरूप व अभाव स्वरूपके सम्बन्धमें वास्तविक तथ्य—वास्तविकता तो यह है कि घडेमें घडेकी सत्ता है और वह घडेमें ही सम्बन्धित हो गयी। अब कोई सत्ता घडेसे बाहर नहीं है। इसी तरह जितने भी पदार्थ हैं सब पदार्थोंकी सत्ता उन उन ही पदार्थोंमें समा जाती है। उन पदार्थोंसे बाहर कोई सत्ता नजर नहीं आती। तो यों जितने पदार्थ हैं उतनी सत्ता अपने आप बन गई क्योंकि पदार्थ और सत्ता कोई न्यारी चीज नहीं है कि सत् अलग हो, घड़ा कपड़ा आदिक अलग हो और सत्ताका सम्बन्ध बने तब वह घड़ा कपड़ा सत् कहलाये। किन्तु जो जो पदार्थ हैं उनमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनका सत्त्व स्वयमेव है और उनका सत्त्व उनमें ही पूर्ण हो जाता । उनसे बाहर सत्त्व नहीं रहती । और इसी प्रकार समवाय भी अनेक बन जाते हैं । घडेमें सत्त्वका तादात्म्य कहलाया । अब यह तादात्म्य घडेसे बाहर कहाँ है ? जिस पदार्थमें जो गुण है, शक्ति है, स्वरूप है उनका समवाय अर्थात् तादात्म्य उनका उनमें ही है । तो यों सत्ता भी अनेक सिद्ध होती है और समवाय भी अनेक सिद्ध होता है ।

शंकाकार द्वारा सत्त्वके एकत्वका प्रतिपादन और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि सत्ता अनेक नहीं है और समवाय भी अनेक नहीं है । किन्तु जो समवायी पदार्थ हैं उनके विशेषण ही अनेक प्रकारके हुआ करते हैं । जैसे घड़ा है, कपड़ा है आदिक जो नाना सत्ता मालूम होती हैं तो सत्ता नाना नहीं है । सत्ता तो एक है, किन्तु विशेषण अनेक हैं । 'घड़ा, कपड़ा आदिकके साथ जो जो शब्द जोड़ेंगे वे विशेषण कहलाते हैं तो विशेषण बनता है सत्ता बनती नहीं है अर्थात् "है" तो एक ही है । जैसे घड़ा है, कपड़ा है, सन्दूक है तो "है" तो एक ही है । उस '"है" के साथ जो शब्द जोडे जाते हैं घड़ा, कपड़ा संदूक आदिक वे बनते हैं विशेषण । तो विशेषणोंका भेद है । सत्ताका भेद नहीं है इसी प्रकार विशेषणका भेद है । सत्ता का भेद नहीं है इसी प्रकार विशेषणका भेद है पर समवायका भेद नहीं है । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे यहाँ यह कह डाला कि सत्ता सर्वत्र एक है पर जिसकी सत्ता कहेंगे वह विशेषण अनेक है । इसी प्रकार अभावमें भी मान लो । अभाव सर्वत्र एक है । अब उसमें जो कुछ भी कहेंगे कार्यका पहिले अभाव तो कार्य का पहिले कार्यका पीछे एकका दूसरेमें, ऐसा विशेषण ही बनता है । पर अभाव बनता नहीं है । इस तरह अभावमें भी भेद न हो सकेगा । वहाँ भी यह कहा जा सकेगा कि अभाव तो एक है पर अभावके विशेषणोंमें भेद हुआ करता है ।

अभावकी अनेकताकी तरह सत्त्वकी भी अनेकता—शङ्काकार कहता है कि अभावमें तो विरोधी धर्म मालूम पड़ रहे हैं इस कारण वहाँ भेद है । जैसे कि कार्य पहिले न था घड़ा पहिले न था, घड़ा बादमें नहीं है, घडेका कपड़ेमें अभाव है तो यों ये विरोधी धर्म हैं, पहिले नहीं हैं यह बात और किस्मका है । बादमें नहीं है यह बात और किस्मकी है और इसका अमुक नहीं है यह ढङ्ग और किस्मका है । तो ये सब विरोधी धर्म हैं एक ढङ्गसे दूसरा ढङ्ग उल्टा है, तो यों विरोधी धर्म देखा जाता है । इससे सिद्ध होता है कि अभावमें तो भेद है याने प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव आदिक चार प्रकारके अभाव मान लेने चाहियें, क्योंकि उनमें विरोधी धर्मका सम्बन्ध है । इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो सत्ताका भी भेद और समवायका भी भेद विरोधी धर्मके सम्बन्धसे मान लेना चाहिए । जैसे है को तो एक मानते हो और उस में घड़ा है, घड़ा विशेषण लगा देनेसे भेद मानते तो घड़ा और कपड़ा ये विरोधी ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो चीजें हुई। घड़ा अलग चीज है कपड़ा अलग चीज है तो विरोधी धर्मका सम्बन्ध होनेसे सत्तामें भी भेद मानलो, उसे क्यों एक माना जा रहा है ? इस प्रकार यह सिद्ध है कि सत्ता विश्वरूप है अर्थात् जितने पदार्थ हैं उन सब पदार्थोंमय सत्ता है। प्रत्येक अणु है और उस अणुका सत्त्व उस हीमें है अणुका वह सत्त्व अणुसे बाहर नहीं रहता है। इस तरह जब पदार्थ अनन्त हैं, द्रव्य अनन्त हैं तो उनके साथ सत्ता भी अनन्त है। सो जैसे अभावको विश्वरूप मानते हो, जितने पदार्थ हैं उतने ही अभाव हैं तो जैसे अभाव विश्वरूप है उसी प्रकार सद्भाव भी विश्वरूप है, जितने पदार्थ हैं उतनी ही सत्ता है और उतने ही समवाय हुए अर्थात् तादात्म्य सम्बन्ध जैसे आत्मामें चैतन्यका तादात्म्य है पुदगलमें अमूर्तत्वका तादात्म्य है तो ये तादात्म्य भी अनेक हो गए। ऐसा नहीं है कि वह तादात्म्य या समवाय दुनियाभरमें एक हो और जिसमें समवाय आ जाय उसमें सत्ताका ज्ञान हो ऐसा नहीं है।

अपेक्षासे सत्त्वके एकत्व व अनेकत्वकी सिद्धि—सत्त्वका एकत्व मान लेनेपर एकत्वका विरोध भी न मानना चाहिए अर्थात् कोई कहे कि जब घड़ेकी सत्ता घड़ेमें ही समाप्त है, कपडेकी सत्ता कपडेमें ही पूरी समा गई तो यों सत्ता जब अनेक हो गए तब जिसे महासत्ता कहते हैं स्याद्वादी लोग इस तरह कोई एक सत्ता न रहेगी सो कहते हैं। ऐसी भी शङ्का अथवा सम्भावना न करें, क्योंकि दृष्टिसे सत्ता अनेक हैं सो भी सामान्य विवक्षासे सत्ता एक है, इससे किसी प्रकारका विरोध नहीं आता। याने समस्त पदार्थ विशेष दृष्टिसे अपनी अपनी सत्ता रख रहे हैं और जब सभी पदार्थों में केवल सत्त्व सामान्य देखा जाय तो सत्त्वका एकत्व है। जैसे १०० आदमी बैठे हैं तो प्रत्येक आत्माकी सत्ता न्यारी-न्यारी है। प्रत्येक पुरुषका सत्त्व उसका उनमें ही समाया हुआ है। यों १०० पुरुष हैं तो १०० ही सत्त्व हैं। अब उन १०० पुरुषोंको जब सामान्य दृष्टिसे देखते हैं कि सभी पुरुष पुरुष ही हैं, उनमें सामान्यपना भी है तो यों जब मनुष्यपने सामान्यकी अपेक्षा देखते हैं तो वहाँ सत्ता एक है। जैसे कोई पुरुष कहता है कि नौकरको कि कोई आदमी बुला लाओ और वह बालकको ले आये तो अब मालिक उस नौकरपर नाराज नहीं हो सकता कि तुम बच्चेको क्यों ले आये, इतना बड़ा कार्य तो बडे पुरुषसे होता ? तो उसका यह उत्तर हो सकता कि आपने यही कहा कि मनुष्य लाओ। यदि यह कहा जाता कि किसी बलवान युवकको लाओ तो यह विशेष कहलाता तो विशेषकी दृष्टिसे सत्ता न्यारी न्यारी है। अनेक है, पर सामान्यकी दृष्टिसे सत्ता एक है। उसमें भेद नहीं है। और फिर देखिये जो सब विशेष हैं उनमें ही तो सत्ता सामान्यकी प्रतीति होती है। जैसे घड़ा कपड़ा सन्दूक आदिक ये अनेक पदार्थ हैं। तो उन अनेक पदार्थोंमें ही सत्त्व सामान्य है यह बात प्रतीतिमें आती है। कोई विशेषके बिना सत्ता केवल एक कहीं पड़ी हो सो बात नहीं है। जैसे कि असत् विशेषोंमें असत्त्व सामान्यकी प्रतीति होती है इसी प्रकार समवाय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषोंमें भी समवाय सामान्यकी प्रतीति होती है। जैसे आत्मामें ज्ञानका समवाय है तो ज्ञानका कथञ्चित् तादात्म्य है और परमाणुमें मूर्तपनेका समवाय है, तो समवाय सामान्य तब ही तो जाना जायगा जब पहिले सामान्य विशेष समझा हुआ हो तो उन्हीं समवाय विशेषोंमें समवाय सामान्यकी प्रतीति होती है। तो तादात्म्यका या स्वरूप है। जब कोई इसका वर्णन करेगा तब यों जचेगा कि तादात्म्य एक है। समवाय एक है। मगर वह समवाय कहाँ है ? जब आधार रूपसे देखेंगे, व्यापनेके ढंगसे देखेंगे तो वह अनेक सिद्ध हो जायगा। जैसे कि संयोग विशेषोंमें संयोग सामान्य की प्रतीति होती है इस चौकीपर दवातका संयोग है तो संयोग सामान्य कब समझा गया ? जब दवात और चौकीका संयोग विशेष भी ज्ञानमें हो। जैसे चौकीपर दवात है। संदूकपर कपड़ा है आदिक अनेक पदार्थोंके साथ अनेक पदार्थ जुटे हुए हैं तो संयोग सामान्य इसे कहते हैं कि दोका एक जगह अवस्थान हो जाये, तो ऐसा संयोग सामान्य तब ही जाना जाता है, वहाँ ही जाना जाता है जहाँ दो या अनेक पदार्थोंका सम्बन्ध देखा जा रहा हो। तो संयोग विशेषोंमें ही संयोग सामान्यकी प्रतीति है। इसी तरह सत्ता विशेषमें सत्ता सामान्यकी प्रतीति, समवाय विशेषमें समवाय सामान्य की प्रतीति होती है इस तरह सिद्ध है कि जगतमें जितने भी पदार्थ हैं सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हुआ करते हैं। कोई भी पदार्थ केवल विशेषरूप हो सो नहीं होता। किन्तु सब ही पदार्थ सामान्य विशेषरूप हुआ करते हैं।

पदार्थकी सामान्यविशेषस्वरूपतामें दोषोंका अनवकाश—यहाँ कोई यह शङ्का न करे कि पदार्थ तो है सामान्य विशेषात्मक. अब उसमें सामान्य भी हो, विशेष भी हो तो उसमें जो सामान्य है वह भी सामान्यविशेषात्मक होगा, क्योंकि सामान्य है ना ! जो है है वह सामान्यविशेषात्मक है ऐसी स्याद्वादियोंने रटन लगा रक्खी है। इसी प्रकार जो पदार्थमें विशेष है वह विशेष भी सामान्यविशेषात्मक होगा। तब यों अनवस्था दोष होगा। अब उस सामान्यविशेषमें भी अलग-अलग सामान्यमें सामान्य विशेष कहा, विशेषमें सामान्य विशेष कहा तब कहीं भी विराम न हो सकेगा। अन्यथा अर्थात् सामान्यमें सामान्य विशेष न लगावेंगे और विशेषमें सामान्य विशेष न लगावेंगे तो सर्व कुछ सामान्य विशेषात्मक है यह जैनियोंकी प्रतिज्ञा खण्डित हो जायगी। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि अनवस्था दोष तो तब आयगा और प्रतिज्ञा सामान्य विशेषात्मकताकी तब मिटेगी, जब कि सामान्य विशेषको अलग अलग माना जाया पदार्थमें सामान्य विशेष अन्योन्यात्मक है। सामान्यमें विशेष पड़ा है, विशेषमें सामान्य पड़ा है। जैसे घड़ा कपड़ा आदिक विशेष है तब वहाँ हम सत्त्व सामान्य कह सकते हैं। इसी प्रकार सत्त्व जो कुछ है तो वहाँ विशेष भी पड़ा हुआ है तो सामान्य और विशेष अन्यान्यात्मक हैं। तब द्रव्य दृष्टिसे तो एक है और जब वहाँ परस्परमें भेद देखा जाय तो पर्याय दृष्टिसे वह अनेक है अथवा भिन्न-भिन्न है। तो यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपेक्षा है सामान्य विशेषकी परस्परमें इस कारणसे उनमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं दिया जा सकता है अथवा वह सामान्य विशेषात्मक है पदार्थ तो अनवस्था दोष हो सो बात नहीं। जो लोग ऐसा मानते हैं कि सामान्य तो अपने विशेषसे निकल करके अलग हटा हुआ है और विशेष अपने सामान्यसे निकलकर अलग हटा हुआ है। जैसे कि एक घड़ा है। घड़ेमें घटत्व सामान्य है अर्थात् जितने भी घड़ा हैं सबमें घट-पना है तो यों घटत्व सामान्य है और घडेमें जो घड़ा रखा हो, जितना उसका आकार है, जितने वजनमें रूप रंग है उस दृष्टिसे वह घड़ा वही है, अन्य नहीं है, यों हो गया विशेष तो जैसे उस घडेमें सामान्य तो हुआ घटपना और विशेष हुआ यही घट तो ऐसा नहीं है वहां कि उस घटसे निकलकर घटत्व कहीं अलग धरा हो और उस घट सामान्यसे हटकर विशेषघट अलग ही पड़ा रहता हो ऐसा कोई मानता हो तो सामान्य विशेषात्मक माननेपर अनवस्था दोष आ जायगा। पर जो सामान्य विशेषको अन्योन्यात्मक मानते हो उनमें यह दोष नहीं आ सकता है, इसी तरह सामान्यको विशेषसे भिन्न माना जाय और विशेषको सामान्यसे भिन्न माना जाय और उनको स्वतंत्र एक दूसरेकी अपेक्षा न रखने वाले माना जाय तो प्रतिज्ञाकी हानि बनेगी, पर जो लोग जैसे स्याद्वादीजन सामान्य विशेषको अन्योन्यात्मक मानते हैं और एक ही वस्तुमें समाया हुआ मानते हैं तो वहाँ प्रतिज्ञा हानि नहीं होती। यों स्याद्वादमें यहाँ वस्तुका स्वरूप सर्वप्रकार भली भाँति सिद्ध होता है, पर वैशैषिकोंके सिद्धान्तमें वस्तुको सामान्य विशेषात्मक नहीं माना, सामान्यको स्वतन्त्र पदार्थ विशेषको स्वतंत्र पदार्थ माना है, तो उनके ही सिद्धान्तमें पहिले कहे हुए ये सारे दोष आयेंगे स्याद्वादियोंके ये सब दोष नहीं आते।

सर्वथानभिसम्बन्धः सामान्यसमवाययोः ।
ताभ्यामर्थो न संबद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥६६॥

भेदैकान्तमें सामान्य समवाय व पदार्थ तीनोंकी असिद्धि—वैशेषिक सिद्धान्तमें सामान्य और समवायका सर्वथा ही सम्बन्ध नहीं बनता और सामान्य समवायके साथ अर्थका भी सम्बन्ध घटित नहीं होता। इस कारणसे ये तीन अर्थात् सामान्य समवाय और अर्थ ये आकाशपुष्पकी तरह असत् ही रह जाता है। सामान्य और समवायका परस्परमें सम्बन्ध है नहीं। क्योंकि सामान्य और समवायमें न तो संयोग सम्बन्ध माना गया है और न समवाय सम्बन्ध माना गया है। सामान्य और समवाय कोई सम्बन्ध ही न रहा तो अलग समवायका क्या अर्थ ? और फिर ऐसे अवस्तुभूत उन दोनोंसे अर्थका भी सम्बन्ध नहीं है। तब ये तीनों अपना सत्त्व कायम नहीं रख सकते हैं। संयोग सम्बन्ध तो द्रव्य द्रव्योंमें माना गया है और समवाय सम्बन्ध अयुक्त सिद्ध गुण गुणीमें आधार आधेयमें सम्बन्ध माना गया है लेकिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामान्य और समवाय ये न तो द्रव्य द्रव्य हैं और न गुण गुणी है। फिर इसमें न संयोग बनता है और न समवाय बनता है। यदि कोई यह आशंका करे कि सामान्य और समवायमें विशेष्य विशेषण भाव इस समय बन जायगा सो विशेष्य विशेषणभाव इस समय बन जायगा सो विशेस्य विशेषणभाव सामान्य और समवायमें बताना केवल प्रलाप है। इसमें विशेष्य विशेषण भाव होना असम्भव है। और, फिर कदाचित कोई यह कहे कि सामान्य समवायी है सो इससे विशेष्य विशेषणभाव बन जायगा। तो ये बतायें कि सामान्य जो समवायी बनता है वह स्वत: बनता है या पर पदार्थसे बनता है ? स्वत: तो कह नहीं सकते, क्योंकि स्वत: कोई समवायी नहीं माना गया। समवायके सम्बन्धसे पदार्थोंको समवायी माना गया है। यदि कहोगे कि परसे सामान्य समवायी कहलाने लगेगा तो इसमें फिर कहीं भी अवस्थान नहीं रह सकता। फिर वह पर भी क्या ? जो सत्से असम्बन्धको प्राप्त होगा ? उसके लिए फिर अन्य समवाय समवायी है इस प्रकार विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना करना भी मिथ्या है। तथा एक पदार्थमें समवायका अनवकाश है, वहां समवायकी गुंजाइश नहीं है। समवाय किसी भी पदार्थमें असम्बद्ध है। क्योंकि समवायका और पदार्थके साथ जो सम्बन्ध बनता है उसके लिये कोई सम्बन्ध माना नहीं गया है। तब इन पदार्थोंमें सामान्य समवायमें सर्वथा संबन्धका अभाव सिद्ध होता है। और, तब इसका कोई सम्बन्ध ही न रहा। सामान्य अर्थसे निराला है, समवाय अर्थसे निराला है, तब ऐसी स्थितिमें परस्पर जिसका सम्बन्ध नहीं है, ऐसा सामान्य और समवायके साथ द्रव्य गुण कर्म ये पदार्थ भी सम्बद्ध नहीं हो सकते हैं। द्रव्यमें सत्ताका समवाय है, गुण कर्ममें सामान्यका समवाय है आदिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जिससे कि उनमें सत्ताका समवाय सिद्ध किया जा सके और इस ही कारण ये तीनों अपने स्वरूपको धारण नहीं कर सकते हैं। जैसे कि कछुवेके रोम कछुवेके रोमका कोई स्वरूप है क्या ? होते ही नहीं हैं फिर उनके विषयमें कुछ कहना, सम्बन्ध बताना यह मिथ्या प्रलाप है।

भेदैकान्तमें कर्ता कर्म आदिकी विभक्तिकी अनुपपत्ति—उक्त प्रकार सामान्य समवाय और अर्थ ये परस्पर किसीसे कोई सम्बद्ध नहीं हैं। और, यों जब अर्थ सामान्य और समवाय ये तीनों परस्पर सम्बन्धरहित हो गए तो सम्बन्धरहित हो गए वे रहे क्या ? यदि सम्बन्धरहित माने जा रहे तो अर्थ सामान्य समवाय ये कुछ भी सत् नहीं रह सकते। और, जब ये सत् नहीं रहे तो असत्में कर्तृत्वपनेकी बात ही क्या है? कोई भी स्वरूप जब सम्भव ही नहीं है तो किसे कर्ता बताओगे और किसको अन्यको कर्म बताओगे ? तो जब पदार्थ सत्ता समवाय सामान्य, ये परस्पर असम्बद्ध हैं और इस कारणसे इनमें कर्ता कर्म भाव नहीं बनता है जब कर्ता कर्म भाव नहीं बना तो ये सभी पदार्थ अपने स्वरूपको धारण करें यह कैसे कहा जा सकता है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धारण करें यह तो लिङ्ग प्रत्ययका विधान है। वह कर्तामें प्रयुक्त होता है और कर्तृत्व यहाँ सिद्ध हो नहीं रहा और कर्ममें द्वितीया विभक्तिका निर्देश होता है तो जब कर्ता और कर्म ही न रहे तो यह विभक्ति भी कहाँसे बन जायगी ? तो इसका भी कहा जाना अशक्य है कि ये तीनो हैं अथवा अपना स्वरूप रखते हैं।

स्वरूपसत्त्व माननेपर सत्ता सामान्य समवाय आदिके पृथक कल्पनाके प्रयासकी व्यर्थता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि परस्पर सम्बन्ध रहित भी हो तो भी इस द्रव्य गुण आदिकमें स्वरूपसे तो सत्त्व प्रसिद्ध है याने सत्ता सामान्यसमवाय ये पदार्थमें सम्बद्ध नहीं हैं, सभी स्वतंत्र-स्वतंत्र सत् हैं। लेकिन इनका स्वरूप सत्त्व तो प्रसिद्ध है, इस कारण पदार्थ समवाय और सामान्य इनका असत्त्व नहीं कहा जा सकता। किन्तु कछुवेके रोम, आकाश पुष्प, बंध्यापुत्र, खरगोशके सींग आदिकमें स्वरूप सत्त्व ही नहीं है। तो ऐसा दृष्टान्त बताना यह सब विषम उपन्यास है अर्थात् सब अटपट कहे हुए दृष्टान्तका प्रकृतके साथ मेल नहीं खाता। भले ही अर्थ सामान्य समवाय सत्ता ये सब परस्पर असम्बद्ध हैं लेकिन स्वरूप सत्त्व सबका प्रसिद्ध है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि द्रव्य गुण कर्म इनका स्वरूप सत्त्व मान लेनेपर फिर सत्ताका समवाय किसलिए कराया जानेका श्रम किया जा रहा है ? फिर इस सत्का समवाय व्यर्थ है। जैसे कि सामान्य आदिकका स्वरूप सत्त्व मान लेनेपर सत्ताका समवाय कराना व्यर्थ है ऐसे ही जब द्रव्य गुण कर्म इनका स्वरूप सत्त्व मान लिया गया फिर सत् ही हो गए, सत्ताका समवाय करानेकी फिर आवश्यकता ही क्या है ? और ऐसा होता भी नहीं, सत्ता समवाय व्यर्थकी चीज हो जायगी। अथवा यदि द्रव्य गुण कर्मका स्वरूप सत्त्व मान लेनेपर भी सत्ताका समवाय बताना आवश्यक समझा जाय तो सामान्य आदिकमें भी सत्ताका सम्बन्ध हो बैठना चाहिए। यदि इस ख्यालसे कि सामान्य आदिकमें सत्ताका समवाय होना व्यर्थ न हो जाय, यदि सामान्य आदिकका स्वरूप सत्त्व नहीं माना जाता तो सामान्य आदिक और कूर्मरोम, खरविषाण, इनमें कोई विशेषता नहीं रहती। जैसे कूर्मरोम स्वरूपसे सत् नहीं है तब तो जो दृष्टान्त दिया है वह तो बिल्कुल संगत है ना !

भेदैकान्तमें सत्त्व समवायकी अनियतता—भेदैकान्तवादी जरा यह भी बतायें कि सत्ता जब भिन्न मान ली गई है तो समवायकी तरह सत्ता सर्वथा सम्बन्ध-रहित हो गयी। जैसे कि समवाय पदार्थसे अत्यन्त भिन्न है तो समवायका पदार्थमें कोई सम्बन्ध न बना, इसी प्रकार सत्ताका भी कोई सम्बन्ध न बना। और, जब द्रव्य गुण, कर्ममें सत्ताका सम्बन्ध नहीं बनता तो फिर ये द्रव्य गुण कर्म सत् कैसे हो जायेंगे ? तो सत्ताका सम्बन्ध न होनेपर भी द्रव्य गुण कर्ममें तो सत्व मान ले और कूर्मरोम आकाश पुष्प खरविषाण आदिकको सत्त्व नहीं मानते तो यह कोई न्यायकी

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात न रही। इसपर बहुत गहरी दृष्टिसे विचार करना चाहिए। जब तथ्यके विरुद्ध कोई अपना कदम बढ़ाने लगता है तब उसे अनेक विषम प्रसंग आ जाते हैं। तो जब यहाँ द्रव्य गुण कर्ममें सत्ताका समवाय मानकर सत्त्व बना रहे हो तो सत्ताका समवाय तो तब ही कराया जा रहा है जब द्रव्य गुण कर्म असत् हों सो ऐसे ही असत् कूर्म रोम आदिक हैं फिर सत्ताका सम्बन्ध बताकर द्रव्य गुण कर्मका सत्त्व बताओ और कूर्म रोम आदिकमें सत्त्व नहीं बतायें, यह तो पक्षपातकी बात है, बहुत विचार करनेकी बात है। और फिर यह बतलाओ कि वह सत्ता सामान्य जो सर्वथा समवायसे असम्बद्ध है और द्रव्यादिकमें समवायी है तो कैसे उसे यों कह सकेंगे कि सत्ता सामान्य द्रव्यादिकमें समवायी है और समवाय न रहे ऐसा, यह कैसे कहा जा सकेगा ? द्रव्य गुण कर्म आदिकमें समवायी अन्य समवायसे असम्बद्ध है ऐसा ही तो यहाँ प्रतीतिमें आ रहा है। और समझना चाहिए कि समवायी अन्य समवायसे असम्बद्ध है क्योंकि समवायके सम्बन्ध पानेका अभाव दोनों जगह ही समान है। उनमें इस कारण यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि द्रव्यादिकमें समवायी सत्ता सामान्य है और समवाय न हो सत्ता सामान्य यह अटपटी बात स्वीकार नहीं की जा सकती है।

अप्रतिबद्ध पदार्थोंमें समवायकी व्यर्थ कल्पना—यहाँ यदि शंकाकार यह मनमें आशंका रखे कि सत्ता समवायसे असम्बद्ध है और समवाय असद्भूत अन्य समवायसे असम्बद्ध है, यह विशेषता हो जायगी और उससे यह कहा जायगा कि सत्ता सामान्य तो द्रव्यादिकमें समवायी है, पर द्रव्यादिकमें समवायी नहीं है। इस आशंकापर मीमांसा कर रहे हैं कि यह निरखिये कि जब सामान्य और समवाय इन दोनोंका सत्त्व और असत्त्व दोनोंसे सम्बन्ध नहीं है तो इस असम्बद्धताको विशेषित क्या करते हैं अर्थात् विशेषण विशेष्यभावरूपसे सत् सम्बन्ध रहित वस्तु कैसे प्रयुक्त किया जा सकता है ? कोई भी सम्बन्ध जो अपने सम्बन्धियोंसे सम्बन्ध रखता है तो अपने संबन्धियोंसे असंबद्ध ही रहकर कोई संबन्ध उन सम्बन्धियोंमें घटित नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार संयोग भी यदि अपने संयोगी पदार्थमें संबद्ध नहीं है तो अपने संयोगियोंमें संयोग भी घटित नहीं किया जा सकता है। संयोग तो गुण है और संयोगी गुणी हैं, पदार्थ है। गुण गुणीका संयोग संयोगियोंका समवाय होता है ऐसा वैशेषिक सिद्धान्त है। परन्तु संयोग अपने संयोगियोंमें असम्बद्ध है। ऐसा नहीं कहा जा सकता इस कारणसे कार्य कारणका, गुण गुणीका सामान्य सामान्यवानका भेद एकान्त माननेपर कार्य कारण आदिक भाव युक्तिमें नहीं आते, अकार्य कारण आदिककी तरह। जैसे जो पदार्थ जिसका कार्य कारण नहीं है उनमें कार्य कारणकी बात नहीं कही जा सकती तो इसी प्रकार जब कार्य कारण गुण गुणीमें भेद एकान्त है, अत्यन्त भिन्न–भिन्न पदार्थ हैं तो उनमें कार्य कारण भाव आदिक भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं कहे जा सकते, क्योंकि ये सब तो समवायसे भिन्न पदार्थ हैं उसी प्रकार समवाय भी उन सबका परस्पर घटन नहीं कर सकता अर्थात् वे सब परस्परमें असम्बद्ध हैं यह बात भी सङ्गत नहीं बन पाती, क्योंकि सभी पदार्थ सर्वथा सम्बन्धरहित हो गए। जैसे सम्बन्धरहित अन्य अन्य पदार्थोंमें कुछ भी घटन नहीं किया जा सकता है। इस कारण समवाय असत् ही रहा और जो असत् है वह अर्थक्रियाकारी होता ही नहीं। जैसे कूर्मरोम, यह क्या अपनेमें और परमें अर्थक्रिया कर सकता है ?

भेदैकान्तपक्षमें किसीकी भी अर्थक्रियाकारिता न होनेसे शून्यताका प्रसङ्ग—असत्में अर्थक्रियाकारकत्व नहीं हुआ करता. सो यों द्रव्य, गुण, कर्म सत्ता, सामान्य, समवाय ये सभी असत् हो जाते हैं। वे सामान्य सत् जो पदार्थोंसे असम्बद्ध हैं वे अपने विषयमें ज्ञान उत्पन्न करा दें, इतनी भी अर्थक्रियाको करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। किसी कार्यको कर सके, यह भी नहीं बनता और वे अपना ज्ञान करा सकें यह भी वहाँ नहीं बनता। तब यह ही निष्कष निकला कि द्रव्यादिक पदार्थ हैं ही नहीं, क्योंकि सत्ताका समवाय उनमें नहीं है। वे पदार्थ स्वयं सत नहीं हैं। तो सत्ताका समवाय न होनेसे द्रव्यादिक पदार्थ सत नहीं हो सकते। यहाँ शङ्काकार कहता है कि इस हेतुका सामान्य आदिकके साथ व्यभिचार होजायगा, क्योंकि सामान्य आदिकमें सत्ताका समवाय नहीं है, फिर भी सत्त्व माना ही गया है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि सामान्य समवाय और विशेष इनका भी परमार्थसे सत्त्व नहीं माना गया है और उपचरित सत पदार्थोंसे कोई व्यभिचारकी बात बताना यह सङ्गत नहीं बनता। परमार्थतः सत्त्वका अभाव हो फिर उसकी सिद्धि अगर की जाय तो ऐसे में तो बड़ी बड़ी विड़म्बनायें हो सकती हैं। मसकमें ऊपर रहने वाले धूमके साथ फिर सत्ता धूमका भी व्यभिचार हो जायगा। इस प्रकार कार्य कारण आदिकमें भिन्नताका एकान्त करना समीचीन नहीं है क्योंकि वहाँ प्रमाणका अभाव है। तो जैसे इन पदार्थोंमें अभिन्नताका एकान्त करना प्रमाणसिद्ध नहीं है इसी प्रकार कार्य कारण आदिकमें भी भिन्नताका एकत्व करना समीचीन नहीं है।

गुण गुणी आदिका भेदैकान्त माननेपर सबके असत्त्वका प्रसङ्ग—यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि गुण गुणी, कार्य कारण, उपादान उपादेय इन सबमें भेदका एकान्त मानना सङ्गत नहीं होता। गुण गुणी कथंचित् भेदरूपसे है। जैसे गुण है चेतन, गुणी है आत्मा अथवा ज्ञानदर्शन सुख आदिक गुण हैं, जीव गुणी हैं, तो वह गुण गुणीसे भिन्न प्रदेशमें नहीं रहता और उस गुणका द्रव्यके साथ तादात्म्य है, यों कहना चाहिए कि द्रव्य ही एक सत है। जितनी प्रकारकी जातिके द्रव्य मिलें वे सब द्रव्य सत हैं। उन द्रव्योंमें गुण, क्रिया, परिणति, ये सब तादात्म्यरूपसे पाये जा रहे हैं। जो अनित्य धर्म है वह तो उस पदार्थमें उस कालमें तादात्म्यरूपसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहता है, किन्तु जो नित्य धर्म है, जो पदार्थका स्वरूप ही है वह शाश्वत उस पदार्थमें तादात्म्यरूपसे रहता है। तब गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, ये कोई पृथक पदार्थ नहीं हैं। पदार्थ तो द्रव्य है। अब जाति अपेक्षासे उस द्रव्यके अनेक भेद कर लिए जायेंगे और यों वहाँ व्यक्ति व्यक्तिरूपसे अावान्तर सत्त्व ही बन जायगा, पर कर्मादिक ये द्रव्यके धर्मरूप हैं, अंश हैं, पर ये स्वतंत्र कोई पदार्थ नहीं हैं। अतः मानना चाहिए कि गुण गुणी आदिकमें सर्वथा भेद नहीं है। किन्तु लक्षण भेदसे भेद है। जिसके बलपर प्रतिपादनकी पद्धति चलती है और एक ही सत्में तादात्म्यरूपसे रहनेके कारण इन सबका अपने गुणोंमें अभेद है। यहाँ तक यह कथञ्चित भेद और अभेद सिद्ध किया। यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि कार्य कारण आदिकमें नित्यताका एकान्त नहीं रहता है तो मत रहो, परमाणु तो नित्य माना गया है और वह समस्त अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न हो नहीं सकता तब अनन्यताका ही एकान्त मान लेना चाहिए ऐसा कहने वाले शङ्काकारके प्रति कहते हैं।

अनन्यतैकान्तेणूनां संघातेपि विभागवत्।
असंहतत्त्वं स्याद्भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा॥ ६७॥

एकत्वैकान्तपक्षमें अर्थात् भेदैकान्त अथवा अपरिणम्यैकान्तमें पृथ्वी आदि संघातोंकी भ्रान्तताका प्रसङ्ग—यदि एकत्वका ही एकान्त किया जाय तो संघातके समयमें भी जब कि परमाणुओंका इकट्ठा पिण्ड नहीं रहा है उस समय विभागकी तरह स्वतंत्र निराले-निराले परमाणू रहेंगे और उस समय उन परमाणुओं में परस्पर असम्बद्धता रहेगी और जब परमाणु परस्पर सम्बन्धित न रहे तो स्वयं क्षणिकवादियोंका जो भूत चतुष्टय कहा गया है पृथवी, जल, अग्नि, वायु आदिक वे सब भ्रांत हो जायेंगे। जैसे कि विभाग होनेपर परमाणु स्वतंत्र स्वतंत्र असम्बद्ध रहते हैं उस ही प्रकार संघातके सम्बन्धमें भी परमाणु असम्बद्ध रहेंगे। क्योंकि अब तो उनमें सब प्रकारसे अन्यत्वका अभाव मान लिया? अर्थात् अन्य स्वरूपसे परिणमन नहीं होता है। यह क्षणिकवादमें कहा गया है, क्योंकि यदि अन्य स्वरूपसे परिणमन मान लिया जाय अर्थात् परमाणु अन्य-अन्य होने लगेंमें तो उनमें अनित्यताका प्रसंग आयगा। अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि परमाणुओंमें अनित्यता रही आये, वह तो हमें इष्ट है। अनित्यपना चाहे रहा आये, परन्तु परिणामिता न रहेगी। वस्तु एक ही हो सदा और वह भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपनी अवस्थायें बदलता रहे उस कहते हैं परिणामिता, सो परिणामपना तो नहीं है अनित्यपना रहा आया, सो संघातके काल में क्रियाकी उत्पत्ति होनेसे उसका जो समवायी कारण है उसका स्वका संयोग स्वभाव जो हुआ है अर्थात् परमाणु और संयोगका स्वभाव आया है उसका ही नाम संघातपना रहेगा। परमाणु तो पूर्ण निराले स्वतंत्र हैं, उनमें सम्बन्ध नहीं होता मगर संयोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बना हुआ है। जैसे कि चौकीपर दवात है, चटाईपर चौकी है इसी तरहसे उन परमाणुओंका संघात बनना होता है स्कंधमें। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उनके अतिशयकी यदि अनुपपत्ति मानी जाय अर्थात् परमाणुओंमें किसी भी प्रकारका परिणमनरूप अतिशय न माना जाय तब तो संयोग होना ही असम्भव है, फिर तो इतना भी नहीं कहा जा सकता कि उन परमाणुओंका संयोग है। संयोग होनेपर भी तो कोई अतिशय ही तो बना और परमाणुओंमें अतिशय क्षणिकवादमें माना नहीं जा रहा तब वहाँ संयोग ही असम्भव हो गया, फिर जो अवयवीका लक्षण कहा है पृथ्वी आदिक चार भूत जो माने गए हैं वे सब भ्रान्त बन बैठेंगे।

परिणामिता स्वीकार किये बिना अतिशयकी सिद्धिकी अशक्यता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि जड़ात्मक क्रियामें अतिशय हुआ करता है। जेसे कोई चीज फेंक दी तो उसमें कर्मका अतिशय हुआ तो क्रियारूप परिणाम हुआ, उस का संयोग है परमाणुओंमें, अतएव संयोग भी भ्रान्त न रहे। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यदि चलनात्मक कर्मका अतिशय मानते हो तो कथञ्चित् अन्यता तो हो गई। पहिले वे परमाणु चलनक्रियासे रहित थे, अब चलनक्रियासे युक्त हो गए, तो अतिशय ही कहलाया। उन परमाणुओंमें अन्य प्रकारका परिणमन ही तो कहलाया। यदि इस प्रकारका कथञ्चित या अन्यत्व न माना जाय तब तो संयोग ही नहीं बन सकता है। शंकाकार कहता है कि परमाणु तो क्षणिक है इस कारण उसमें यह दोष नहीं दिया जा सकता। रहे आये क्रियाके साथ उनका अभाव प्रति समयमें नवीन-नवीन वस्तु ही बनती है। अब वह वस्तु कोई किसी क्रियारूप बनता, कोई किसी क्रियाको लेते हुए जन्म लेता, पर है वहाँ सब अनित्य ही, इस कारण पूर्वोक्त दोष नहीं आता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि परमाणुओंको क्षणिक मान भी लिया जाय फिर भी यह तो विचारो कि कार्य कारणमें अनन्यताका एकान्त होनेपर अर्थात् वहाँ कुछ भी अन्यता न माननेपर धारण क्रिया आदिक परमाणुओंमें संघातके समय में भी न होगा। जैसे कि विभागकी दशामें उन परमाणुओंमें धारण आकर्षण आदिक नहीं होता है। जैसे कि विभक्त परमाणु हैं उनसे सम्बद्ध परमाणुओंमें कोई विशेषताकी उत्पत्ति तो होती ही है, तब ही तो धारण आकर्षण आदिक क्रिया बनती है। परमाणु अपनी सही स्वतंत्र स्थितिमें हो तो उनमें पानी कौन भर लेगा? और, जब वे परमाणु उस विभक्त दशासे हटकर एक सम्बद्ध दशामें आता है तो उनमें कोई विशेष अतिशय ही तो बना तभी अवधारण ग्रहण आदिक बातें होने लगी हैं।

जनित विशेषसे भेदैकान्तका निराकरण—शंकाकार कहता है कि उन ही विभक्त परमाणुओंकी सम्बद्ध की स्थितिमें ही कह लीजिए कि कोई विशेषता हुई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है फिर भी अन्यता तो नहीं है। जैसे कि नीचे मुख जिसका हो ऐसा घड़ा रखा है और जिसमें पानी भरा हो ऐसा भी घड़ा रखा है तो इनमें कोई अन्यता न आयगी। घड़ा वही था जब अधोमुख था। जब आकर्षण न होता था। अब पानी भर गया तो जैसे वहाँ वही विशेषता समझी गई इसी तरह विभक्त परमाणुओंसे सम्बद्ध परमाणुओं में विशेष उत्पत्ति हो जाती है। इसमें धारण आकर्षण आदिक कार्य भी बन जाते। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो उन सम्बन्धित हुए परमाणुओंमें जो कोई विशेषता आ गयी है वह भेदैकान्त पक्षका निराकरण कर देता है और, भेद एकान्त का निराकरण होनेपर उन अणुओंमें परमाणुपनेका विरोध हो जायगा। तब तो स्कंध ही कहलाने लगेगा। क्योंकि भेद एकान्तका निराकरण होनेपर उन परमाणुओं में एकत्व परिणामात्मक स्कंध बन जाता है।

विभक्त और संघाती अणुओंके कार्यकी विशेषतासे परिणामिताकी सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जो भिन्न-भिन्न परमाणु हैं उनसे और जो एक साथ पिण्डमें सम्बन्धित परमाणु हैं सो लक्षण समान हैं। लक्षण कहीं जुदे जुदे नहीं हो गए तब उनमें अन्यत्व सम्भव नहीं है। हाँ वे परमाणु जब सम्बद्ध दशामें आ गए तो वहाँ धारण आकर्षण आदिकका सामर्थ्य आयगा पर स्कंध हो जानेपर कहीं वे अपरमाणु तो नहीं हो गए। परमाणु परमाणु ही हैं। स्कंधकी स्थितिमें भी संयोग है धारण आकर्षण है, कुछ विशेषता हुई है इतना सब कुछ होनेपर भी परमाणु परमाणु ही है। कहीं वह अपरमाणु नहीं बन गया, जिससे कि कार्य परमाणु और कारण परमाणुमें अविशेषता न रही, समानता रहेगी। दोनों ही परमाणु कहलाते हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि विभक्त स्थितिके परमाणुओंमें और स्कंध संघात की स्थितिके परमाणुओंमें यदि सर्वथा समानता ही कहीं जाय तो जैसे अलग अलग एक एक रहने वाले परमाणुओंमें धारण आकर्षणका सामर्थ्य नहीं है उसी प्रकार संघातकी स्थितिमें भी धारण आकर्षणका सामर्थ्य न बन सकेगा और यदि संघातकी दशामें उन परमाणुओंमें धारण आकर्षणका सामर्थ्य माना जायगा तो फिर विभक्त जुदे जुदे रहने वाले परमाणुओंमें भी धारण आकर्षण हो जानेका प्रसंग आयगा। शंकाकार यदि यह कहे कि वे पपमाणु चूंकि विभक्त हैं, न्यारे न्यारे हैं इस कारण उन परमाणुओंमें धारण आकर्षणका सामर्थ्य नहीं आ पाता तो सुनो ! बस इस ही कारणसे जो संघात दशामें परमाणु हैं उनमें मान लिया जाए कि वह सामर्थ्य नहीं आती। जब परमाणुओंमें कोई परिणमन नहीं माना जाता तब अतिशयके अभावमें सारी बात दोनों जगह एक समान माननी पडेगी चाहे परमाणु शुद्ध हालतमें हो अथवा संघात दशामें हो। परिणमन न मानने वालेको प्रत्येक बात दोनों ही स्थितियों में एक समान समझना पडेगा। पर ऐसा है कहाँ ? स्वयं विभक्त परमाणु रहता हो तो वहाँ धारण आकर्षण आदिक कार्य नहीं होते। संघात दशामें धारण आकर्षण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक देखे गए हैं। किसी भी विशेषके द्वारा उनके भेदका निराकरण नहीं हो सकता और तब जो पृथ्वी, जल, अग्नि वायु चार भूतोंकी स्थिति मानी है वह सब केवल भ्रम मात्र रह जायगा। क्योंकि सब ही समयोंमें परमाणुपना रहा करेगा। संघात स्थिति भी है, पृथ्वी आदिक भूत चतुष्टय भी है लेकिन परमाणु तो सदा परमाणु ही रहता है। उसमें कोई अतिशय क्षणिकवादमें माना ही नहीं गया है।

विभक्त और संघातरूप अणुवोंमें समानताका प्रत्यक्ष विरोध होनेसे अनन्यताके एकान्तकी असिद्धि—शङ्काकार कहता है कि यह भी बात हमें इष्ट है अर्थात् परमाणु सदा परमाणुरूपमें ही रहता है, इस कारणसे भूत चतुष्टय विभ्रम मात्र है यह दोष नहीं दिया जा सकता। रहा अविभ्रममात्र, और परमाणु केवल परमाणुरूप रहा आये। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि परमाणु संघातकी दशामें पृथ्वी आदिक भूतकी स्थितिमें परमाणुरूपसे ही रहता है, इसमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण से विरोध आता है। स्कंधरूपमें आये हुए परमाणु और अलग-अलग रहने वाले परमाणु इनको पूर्णतया समान माना जाय यह बात प्रत्यक्षसे विरुद्ध हो जाती है। प्रत्यक्ष बाह्य वर्ण संस्थान आदिकका साक्षात्कार कर रहा है और वह स्थूल है, उसके समान आकार है। यह सब भी प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है। हर्ष सुख दुःख आदिक अनेक पर्यायरूप आत्मा भी सुसम्वेदनसे स्पष्ट जाना जा रहा है। अब इस तरह अन्तः और बाह्यमें इन पर्यायी पदार्थोंसे साक्षात् करने वाला प्रत्यक्ष भी यदि भ्रान्त मान लिया जाय तो फिर वह और अन्य अभ्रान्त प्रत्यक्ष लक्षण है क्या? जो कि प्रत्यक्षका लक्षण बन सके, और जब प्रत्यक्ष न बना तो प्रत्यक्षके अभावमें अनुमान भी कैसे विरुद्ध न होगा, क्योंकि अनुमानकी प्रमाणता तो हेतुकी प्रत्यक्ष सिद्धतापर है। प्रत्यक्ष आदिक का विरोध होनेपर स्वसम्वेदन ज्ञान भी सिद्ध न हो सकेगा, क्योंकि सभी समय देख लो। सम्वेदन परमाणुमात्रका अनुभव नहीं होता है। कार्यकी भ्रान्तिमें परमाणुकी सिद्धि भी वास्तविक न बन सकेगी। स्कंध है परमाणुका कार्य और स्कंधको यदि वास्तविक नहीं मानते, परमाणुकी अन्य दशा हो गयी इस तरह स्वीकार नहीं करते तब तो परमाणुकी भी सिद्धि नहीं हो सकती।

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न ॥ ६८ ॥

स्कन्धोंके ज्ञानको मात्र विभ्रम माननेसे कारण परमाणु, गुण, जाति आदि सभीकी शून्यताका प्रसङ्ग—कार्यका भ्रम होनेसे परमाणुमें भ्रान्ति हो जायगी, किन्तु परमाणुको माना है कारण और कारण समझा जाता है कार्यके आधारसे। किसी भी पदार्थको यह कारण है यह समझना है तो कार्य समझकर समझना बनेगा। तो जिसका कार्य लिङ्ग नहीं है उसका कारण भी सिद्ध नहीं होता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यों कार्यमें विभ्रम माननेसे परमाणुओंके ज्ञानमें भी विभ्रम समझिये और इस तरह ये कार्य कारण दोनों ही नहीं रहते हैं। न कोई कार्य परमाणु रहा न कुछ कारण परमाणु रहा तब ऐसी स्थितिमें उनमें रहने वाला गुण, जाति, क्रिया आदिक भी सिद्ध न होगा। शङ्काकार कहता है कि परमाणुओंकी तो प्रत्यक्षसे प्रसिद्धि है फिर परमाणुओंमें भ्रम क्यों बताया जा रहा ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि परमाणु किसी को भी प्रत्यक्षभूत नहीं हो रहे। हम आप सब कोई इस पृथ्वी आदिक स्कंधोंको ही देख रहे हैं नेत्रइन्द्रियजन्य ज्ञानमें स्थूल एक आकार जाना जा रहा है, सो यही प्रतिभास प्रमाणके निरंश एकान्तवादका खण्डन करता है, अर्थात् "परमाणु सदा पृथक पृथक रहता है, उसका मेल होनेसे बन्धन संघातरूप स्थिति नहीं होती" इसका खण्डन तो यह इन्द्रिय आदिक जन्य ज्ञानमें प्रतिभासित हुआ स्थूल एक आकार ही कर रहा है। अथवा चक्षु आदिक ज्ञानमें स्थूल एक आकारसे विपरीत परमाणु अथवा उसका आकार नहीं दिख रहा है।

कार्यरूपको विभ्रम माननेपर कारणरूप अणुओंमें भी भ्रान्तिका प्रसङ्ग—यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि नित्यत्वैकान्तका निराकरण करनेपर यह हो जायगा कि परमाणुओंमें फिर जो एकत्व आदिकका ज्ञान हो रहा है वह सब भ्रान्त हो जायगा, तब स्याद्वादमें नित्यत्वैकान्तका निराकरण किया सो उसके फलमें यह बात फिर बनेगी कि अब परमाणुओंका एकत्व सिद्ध ही न हो सकेगा। एकत्व विषयक समस्त ज्ञान भ्रान्त मान लिए जायेंगे। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये ! परमाणु जब चक्षुआदिक इन्द्रियज ज्ञानको अपना स्वभाव नहीं सौंप रहा है तो कार्यलिङ्गका अभाव तो हो ही गया। ज्ञान तो शङ्काकारके सिद्धान्तमें तब ही बनता है जब पदार्थ अपना स्वभाव आकार सौंपे। अब परमाणुओंने अपना स्वभाव तो चक्षु आदिक इन्द्रिय ज्ञानमें सौंपा नहीं है जब कोई कार्यलिङ्ग न रहा तो परमाणुका स्वभाव माननेकी बात भी अयुक्त हो जाती है। जैसे अलग-अलग खडे हुए बकुल शीशम सागोन आदिकके अनेक पेड़ हैं तो उनमें कभी प्रत्यक्षसे उनका भिन्न-भिन्न रूपसे ज्ञान नहीं हो रहा। और, दूरसे एक सघन ही सब कुछ दिख रहा है तो उनके अनेक आकारोंका प्रतिभास जैसे भ्रान्त बन गया तो अब वहाँ उन पेड़ोंके स्वभाव माननेकी बात न बन सकेगी। इसी प्रकार यदि इन परमाणुओंमें स्वभाव अर्पण करनेका सामर्थ्य नहीं है तो कार्यलिङ्ग न बननेसे प्रमाणत्व भी न समझा जायगा, क्योंकि परमाणुरूपमें कारणत्व है, वह तो कार्यलिङ्गपर निर्भर है। कार्यलिङ्गका अभाव होनेसे परमाणूपनका भी परिज्ञान नहीं बन सकता। सो देखिये ! कार्य लिङ्ग तो है कारण परमाणूरूप। तो जब कार्यमें भी भ्रान्ति हो गयी तब फिर वह कारणरूप परमाणू भ्रान्त क्यों न कहलायेगा ? यदि इस दोषके भयसे परमाणूओंका कार्य ही न माना जाय तो देखिये ! परमाणूओंका कार्य न मानने पर इन दोनोंका अभाव हो जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कार्य तो माना ही नहीं। कार्य न माननेसे कारण परमाणू भी नहीं रह सकता। जब यह स्कंध न माना जायगा तो स्कंधका कारणभूत परमाणू कैसे स्वीकार कर लिया जायगा ?

भेदैकान्तपक्षमें कार्य परमाणु व कारण परमाणु दोनोंका अभाव होनेसे गुण जाति क्रिया आदि सभीके अभावका प्रसङ्ग—अनन्यतैकान्त पक्षमें कार्य व कारण दोनोंका अभाव होनेसे फिर उनकी जो वृत्तियाँ हैं—जाति, गुण, क्रिया आदि वे सब भी न होंगीं। जैसे—कोई कहे कि आकाशफूलमें बड़ी सुगन्ध है तो यह बात अविवेकपूर्ण ही कही हुई है। जब आकाशफूल ही नहीं है तो उसमें सुगन्धि बतानेमें क्या दम रहा ? तो इसी तरह जब परमाणु और परमाणुका कार्य ही न रहे तो फिर जाति, गुण, क्रिया आदिका विभाग बताना सङ्गत नहीं हो सकता। गुण जातिरूप सत्ता आदिक स्वभाव मानना अथवा अन्य बातें मानना क्रियाविशेष समवाय परमाणु वृत्ति कार्यवृत्ति ये सभी के सभी अब न किए जा सकेंगे जब कि कार्य और कारण ये दोनों ही नहीं माने गए अथवा सम्भव न हो सके। जैसे आकाशपुष्पका अभाव है तो आकाशपुष्पका अभाव होनेपर भी क्या कोई आकाशपुष्पमें रहने वाली सुगंधिको मान लेता है। यदि परमाणुसे कारण कार्यरूप न माननेपर जाति गुण क्रिया आदिक मान ली जायें तब फिर आकाशफूल न होनेपर भी उसमें सुगन्धिका न रहना माननेका प्रसङ्ग आ जायगा। तो जब गुण जाति परमाणु कार्य आदिक या उसमें रहने वाली वृत्ति न बन सके तब जो गुण जाति आदिकको मानना चाहते हैं ऐसे पुरुषोंका कार्य द्रव्य अभ्रान्त मानना ही पडेगा और वह इस तरह सम्भावनामें आता है कि परमाणुओंमें परमाणू रूपताका त्याग हो और अवयवी रूपताका ग्रहण हुआ। तो जब परमाणूरूपताका त्याग और अवयवी रूपताका ग्रहण माना जाय तब ही कार्यकारण भाव माना जा सकता है। इस प्रकार यहाँ यह सिद्ध हुआ कि परमाणूओंमें अनन्यता का एकान्त नहीं है। तो जो ऐसा मानते हैं कि परमाणू सदा ही अपने आपकी एकता में, स्वतन्त्रतामें ही रहते हैं उन परमाणूओंके मिलकर कोई स्कंध आदिक दशा नहीं बनती है। यह सिद्धान्त निराकृत हो जाता है, क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति होनेपर परमाणूओंमें कथञ्चित् अन्यता ही आ जाती है। अर्थात् वे परमाणू पहिले विभक्त थे जुदे जुदे थे, अब स्कन्धरूपसे परिणत हो गए हैं तब क्षणिकवादियोंकी तरह वैशेषिककी भी तो अन्यताकी सिद्धि नहीं हो सकती। अब कार्यकारणका अभाव माननेपर क्या दोष आता है सो बतलाते हैं।

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः।
द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृत्तिश्चेन्मृषैव सा ॥६६॥

कारण कार्यमेंसे एकको ही सत् माननेपर अविनाभावी शेषके अभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का व द्वित्व संख्याके विरोधका प्रसग—सांख्य सिद्धान्तमें कार्य और कारण दो परमार्थभूत नहीं माने गए हैं। उनमेंसे एक ही चीज है। कार्य अलग हो, कारण अलग हो, ऐसी बात इस सिद्धान्तमें नहीं है। तो कार्य और कारणमेंसे किसी एकको ही माना जाय तो इसका फल यह होगा कि दूसरेका अभाव हो जायगा। कारण ही माना तो कार्य न रहा, कार्य माना तो कारण न रहा। और ऐसी स्थितिमें एकका अभाव क्यों ? फिर बाकी जो कुछ शेष बचा है उसका भी अभाव हो जायगा। बाकीका शेष अविनाभावी कारण तभी होता है जब कि कार्य होता है। कार्य तब ही होता है जब कि कारण हो और फिर दो आदिक संख्याका भी विरोध होगा। यह कारण है इस प्रकार द्वित्व संख्या नहीं बन सकती है। यदि कहो कि यह सब सम्वृत्ति रूप है। केवल कल्पनासे ही मानी गई बातें हैं तो सम्वृत्ति तो मिथ्या ही हुआ करता है, उससे कोई द्वित्वकी सिद्धि नहीं हो सकती। कार्य तो हुए सांख्य सिद्धान्तमें महान अहंकार आदिक और कारण हुआ प्रधान तो कार्यका और कारणका परस्परमें एकत्व है, तादात्म्य है और ऐसी स्थितिमें कोई एक ही है, ऐसा कार्य कारणका एकत्व माना जाय तादात्म्य है और ऐसी स्थितिमें कोई एक ही है, ऐसा कार्य कारणका एकत्व माना जाय तादात्म्य माना जाय तो दूसरेका अभाव हो जायगा, क्योंकि दोनों सर्वथा एक मान लिए गए तो एक कौन रहा ? यों केवल एकका आग्रह करनेपर शेष का भी अभाव हो जायगा। जैसे कि कार्य ही माना तो कारणका अभाव हो जायगा कारण ही माना तो कार्यका अभाव हो जायगा क्योंकि कार्य कारणमें अविनाभावका नियम पाया जाता है। एक न हो तो दूसरा भी नहीं हो सकता। इस प्रकार सभी वस्तुओंका अभाव बन जायगा।

कार्य और कारणमें सर्वथा एकत्व माननेपर मूल तत्त्वोंकी अपरिचिति व शून्यताका प्रसंग—शंकाकार कहता है कि कार्यका तो कारणमें प्रवेश हो जाता है इस कारणसे कार्य कोई पृथक चीज नहीं रहती है। और ऐसी स्थितिमें एक कारण ही सत् रह जाता है। क्योंकि कारण नित्य है। अतः कार्यका कारणमें प्रवेश हो जानेसे ये दो न रहे, किन्तु एक ही कारण रह गया। अब ऐसा सिद्धान्त मानने वालोंके प्रति उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो द्वित्व संख्याका विरोध रह ही गया है। याने द्वित्व संख्या फिर हो नहीं सकती। कार्य और कारणका सर्वथा एकत्व माननेपर फिर कार्य कारण आदिक एक वस्तुमें न रह सकेंगे। जैसे कि एक वस्तुमें क्या कार्य क्या कारण कहा जाय ? तो ऐसे ही एक माननेपर द्वित्व संख्या भी नहीं रह सकती। यदि यह कहे शङ्काकार कि द्वित्वकी संख्या मानना भी काल्पनिक है। प्रधान महान आदिकके प्रसंगमें ये दो हैं ऐसा कहना कल्पनामात्र ही है, तो सुनो ! कल्पना तो मिथ्या ही होती है। तो यह द्वित्व संख्या भी कार्य कारण भावकी तरह मिथ्या बन जायगी, और ऐसा कार्य कारण मिथ्या होनेपर फिर प्रधानका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिज्ञान कैसे होगा? सांख्य सिद्धान्तमें दो तत्त्व सिद्ध किए जा रहे हैं-प्रधान और पुरुष। इसके अतिरिक्त और कुछ न माना जाय तो बताओ कि प्रधान और पुरुषका परिचय भी किस प्रकार हो सकता है। प्रधानका परिचय तो यों कराया जाता है कि बुद्धि, अहंकार, इन्द्रिय, भूत ये सब पाये जाते हैं तो इनको निरख करके प्रधानकी कल्पना की जाती है। चैतन्य भी इसी ढंगसे माननेमें आ पाता है कि जब सुख दुःख आदिक विदित हो रहे हैं तो यह किस आधारमें है इस तरह सोच कर चेतनका अनुमान किया जाता है। तो अब कार्य तो कुछ माना नहीं गया तो कारणका भी परिचय नहीं हो सकता है। तो बतलाओ कि महान अहंकार आदिकको वास्तविक न माननेपर प्रधान का परिचय किस तरह हो सकेगा? प्रधानका परिचय प्रत्यक्षसे तो हो नहीं सकता क्योंकि प्रधान प्रत्यक्षका विषयभूत ही नहीं है। इन्द्रिय ज्ञानसे तो मूर्त साकार अनित्य यह पदार्थ ही समझा जा सकता है। तो प्रधानका ज्ञान प्रत्यक्षसे न हो सका और अनुमानसे भी नहीं हो सकता। क्योंकि अनुमान तो तब ही बने जब वहाँ कोई अभ्रान्त तात्त्विक लिङ्ग अथवा साधन हो। पर अभ्रान्त लिङ्ग तो है नहीं। तो अनुमान भी नहीं बन सकता। आगमसे भी प्रधानका परिचय नहीं हो सकता, क्योंकि आगम है शब्दरूप और शब्दोंको माना है भ्रान्तस्वरूप। अतएव उन भ्रान्त शब्दोंके द्वारा भी प्रधानका परिचय नहीं किया जा सकता। तो भ्रान्त साधन आदिकसे अभ्रान्त साध्यकी सिद्धि करनेमें अतिप्रसङ्ग हो जायगा, तब तो भ्रान्त धूमको निरखकर अग्निका भी ज्ञान हो बैठेगा। सो इस तरह प्रधान और महत् आदिकमें एकता मानने पर न प्रधानकी सिद्धि होगी न महत् आदिकी सिद्धि हो सकती है।

पुरुष और चैतन्यमें सर्वथा एकत्व माननेपर शेषका अभाव होनेसे मूलके भी अभावका प्रसङ्ग—अब कहते हैं कि जिस प्रकार कार्य कारणमें एकत्व माननेपर न एक ही रहता, न कुछ ही रहता है इसी प्रकार पुरुष और चेतन जो कि आश्रय आश्रयीरूप हैं उनका एकत्व माननेपर वहाँपर भी उनमेंसे किसी एक का अभाव हो जायगा। पुरुषमें यदि चैतन्यका प्रवेश मान लोगे तो पुरुषमात्र ही रह जायगा, चैतन्यका अभाव हो जायगा। और पुरुषका चैतन्यमें अनुप्रवेश माननेपर चैतन्यमात्र ही रह जायगा। तब इस तरह किसी एकका अभाव इन सांख्यवादियोंके भी हो जायगा। और, जब एकका अभाव हो तो शेषका भी अभाव हो जायगा, क्योंकि पुरुष चैतन्यका अविनाभावी है, चैतन्य पुरुषका अविनाभावी है, उनमेंसे किसी एकका अभाव माननेपर दूसरेका भी अभाव हो जायगा। जैसे कोई कहे कि बंध्यापुत्र में रूप और संस्थान है, तो जैसे बंध्यापुत्रके रूप ही नहीं है तो उसका आकार कैसे होगा? क्योंकि आकार स्वभावका अविनाभावी है वह संस्थान, उसी प्रकार पुरुष जो कि आश्रयभूत है उसका अभाव माननेपर आश्रयी चैतन्यका भी अभाव हो जायगा और जब चैतन्यका अभाव हो गया याने स्वभाव ही न रहा तो स्वभाववान पुरुषका

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी अभाव हो जायगा, क्योंकि पुरुष और चैतन्यमें परस्पर अविनाभाव है। तो यों जब पुरुष और चैतन्यका परस्परमें सर्वथा प्रवेश हो जायगा तो द्वित्व संख्या भी नहीं रह सकती। पुरुष और चैतन्यमें अब एकत्व ही मान लिया गया तो दो बातें कैसे कह सकेंगे कि यह चैतन्य है, यह पुरुष है, यह पुरुषका स्वरूप है। वहाँ फिर दो बातें ही सम्भव नहीं हो सकती। यदि शङ्काकार कहे कि उस द्वित्व संख्या आदिकी सम्व्रतीसे कल्पना की जाय तो सर्व शून्य हो जायगा, क्योंकि वास्तविकतासे अब वह विपरीत हो गया। जैसे मिथ्या वचनका कोई अर्थ नहीं है उसी प्रकार सम्वुत्तिकल्पनाका भी वास्तविक विषय नहीं है। परमार्थतः यदि संख्या न मानी जाय तो संख्येय भी नहीं रह सकता। संख्येय मायने पदार्थ। जिन पदार्थोंके बारेमें संख्या बतायी जाती है वे पदार्थ भी न रह सकें, क्योंकि सर्व धर्मोंसे रहित किसी भी वस्तुकी सम्भावना नहीं होती है, इस कारण कार्य कारण आदिकमें अनन्यताका एकान्त सम्भव नहीं होता। जैसे कि कार्य कारणमें अन्यताका एकान्त सम्भव नहीं होता ?

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७०॥

कार्य कारण आदिमें भिन्नता अथवा एकताके सम्बन्धमें उभयैकान्त व अवाच्यतंकान्तकी अयुक्तता—कोई पुरुष यदि कार्य कारणमें भिन्नता अथवा एकताका दोनोंका सिद्धान्त माने अर्थात् भिन्नता भी है और एकता भी है और उसे माने निरपेक्षरूपसे तो उन दोनोंमें विरोध होनेके कारण यह उभयका एकान्त भी सिद्ध नहीं होता। जिसने स्याद्वाद न्यायसे विद्वेष रखा हो एकान्त पक्षका जो आग्रह कर रहा हो उसके यहाँ ये दोनों एकान्त भी सम्भव नहीं होते। इसी प्रकार कोई यदि अवाच्यताका एकान्त करे तो कार्य कारणमें अन्यता है अथवा एकता है? यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह सर्वथा अवाच्य है। यों यदि अवक्तव्यताका एकान्त किया जाय तब फिर वहाँ इतना भी कहना नहीं बन सकता। पदार्थ अवक्तव्य है, इन शब्दोंमें कुछ कहा ही तो गया। जब सर्वथा अवक्तव्य मान लिया जायगा तब फिर यह अवक्तव्य है, इतना भी कहा जाना अशक्य हो जायगा। तो उभय एकान्त तो यों नहीं है कि अवयव अवयवी गुण गुणी आदिकमें जो भिन्नता और एकान्तताका एकान्त माना जा रहा सो ये दोनों एक साथ सम्भव नहीं हो सकते क्योंकि इनमें विरोध है और अपेक्षा भी कुछ नहीं रखी गई क्योंकि एकान्तका आश्रय है। तो यों उभयात्मक नहीं बनता और अवक्तव्यताका एकान्त करनेमें अपने पक्षका ही विरोध होता है। जैसे कोई पुरुष कहे कि मैं सदा मौनसे रहता हूं तो बोल तो रहा ही है, फिर मौन कैसे सिद्ध हो ? तो जैसे कोई कहे कि मैं मौनव्रती हूं तो उसका यह कहना स्ववचन बाधित है। इसी प्रकार कोई कहे कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है तो कहता तो जा रहा है, कैसे माना जायगा कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है ? उसमें तो अपने वचन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का ही विरोध आ जाता है, क्योंकि वह अवक्तव्य है। इस रूपसे तो वह कहा ही गया है। यदि अवक्तव्यताका एकान्त मान लिया जाय तो जब सर्वथा अवक्तव्य बन गया तो दूसरेको किसी भी प्रकार समझाना कैसे बन सकेगा ? यदि कहो कि समझा तो रहे हैं, वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है, इस प्रकारके वचनसे वह समझ जायेगा अवक्तव्यपना, तब फिर उत्तरमें कहते हैं कि बताओ वहाँ अवक्तव्यताका एकान्त रहा कैसे ? वस्तु अवक्तव्य है इन वचनों द्वारा वक्तव्य तो बन ही गया।

किसी प्रकार भी अवाच्यतैकान्त सिद्ध करनेकी अशक्यता—यदि शङ्काकार यह कहे कि परमार्थसे तो कोई भी बात वचनसे समझाई नहीं जा सकती, तब फिर उत्तर सुनो ! कि वहाँ स्वयं अवाच्यताका ज्ञान कैसे हो जायगा ? शङ्काकार यदि कहे कि वस्तुमें वक्तव्यता नहीं पाई जारही, इस कारणसे अवाच्यताका ज्ञान हो जायगा। तो शङ्काकार यह बताये कि वस्तुमें जो वाच्यता नहीं पाई जा रही तो ऐसी वह अनुपलब्धि दृश्यानुपलब्धि है या अदृश्यानुपलब्धि ? दृश्यानुपलब्धि उसे कहते हैं कि जो वस्तु दीखने योग्य हो तो पर उसकी उपलब्धि न हो और अदृश्यानुपलब्धि उसे कहते हैं कि जो वस्तु कभी भी दीखने योग्य ही नहीं है फिर उसकी उपलब्धि है, सो यदि यहाँ दृश्यानुपलब्धि कहते हो तो बताओ वह दृश्यानुपलब्धि कैसे हुआ ? जब दृश्य होकर उसकी अनुपलब्धि है तब उसमें कहीं किसी न किसी प्रकारसे वाच्यता सिद्ध हो ही गई। दृश्य होकर अनुपलब्धि है। वाच्य होकर भी अवाच्य है, यही बात तो आयी, तो कभी वाच्यता तो सिद्ध हो गयी। आज चाहे वाच्यता न मिले तब अवाच्यताका एकान्त न रहा। यदि कहो कि दृश्यानुपलब्धि नहीं है किन्तु वह अदृश्यानुपलब्धि ही अनुपलब्धि है तो ऐसी स्थितिमें वहाँ वाच्यताके अभावका निश्चय कैसे हो सकता है ? शंकाकार कहता है कि विकल्पके द्वारा प्रतिभास होने वाले अन्यापोहमें मानी हुई वाच्यताका स्वलक्षणमें निषेध किया जा रहा है इस कारण उक्त दोष नहीं लगाया जा सकता। इसका स्पष्ट भाव यह है कि अन्यापोहका प्रतिभास विकल्पसे होता है। पदार्थका जो निज स्वलक्षण है उसका बोध तो निराकार दर्शनसे होता है और उसके बाद उसहीसे सम्बन्धित जो कुछ विकल्प उत्पन्न होते हैं उन विकल्पोंसे अन्यापोहका प्रतिभास होता है, तब अन्यापोहमें ही वाच्यता मानी गई है। उस वाच्यताका स्वलक्षणमें प्रतिषेध किया जा रहा है इस कारण यह दोष नहीं दिया जा सकता कि अदृश्यकी अनुपलब्धि बतानेपर तो परमाणु आदिक भी अदृश्य हैं, उनकी भी अनुपलब्धिका प्रसंग आ जायगा, अथवा वाच्यताका निषेध हो जायगा। यह दोष यों नहीं लगा सकते कि हम स्वलक्षणमें अन्यापोहमें मानी हुई वाच्यताका निषेध कर रहे हैं। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि फिर भी वस्तुकी वाच्यताका निषेध नहीं किया जा सका है। आखिर अन्यापोहको वाच्य मानते हुए ही तो वाच्यताका निषेध किया है। भले ही अन्यापोह मानते हो उस वाच्यताका स्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लक्षणमें निषेध किया गया है किन्तु स्वलक्षणकी वाच्यताका प्रतिषेध तो नहीं हो सका है। अन्यापोहकी वाच्यता ही तो वस्तुकी वाच्यता नहीं कहलाती, क्योंकि अन्यापोहकी वाच्यताका वस्तुमें प्रतिषेध किया जा रहा है। यदि अन्यापोहकी वाच्यता ही स्वलक्षण की वाच्यता मान ली जाय तो उसके स्वलक्षणमें फिर प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्धमें अधिक यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि अवाच्यतैकान्तके सम्बन्धमें बहुत ही विस्तार पूर्वक पहिले निराकरण किया गया है। इस कारण यहाँ इस विषयको लम्बा नहीं किया जाता है।

वस्तुकी कथंचित् नित्यता अनित्यता, अन्यता व अवाच्यताका सिद्धान्त—तात्पर्य यह है कि वस्तु न सर्वथा नित्य है न सर्वथा अनित्य है, न दोनोंमें एकान्त है और न अवाच्यताका एकान्त है। अवाच्यताकी बात यदि स्याद्वादके सिद्धान्तमें मानी जाय तो वहाँ कोई दोष न होगा क्योंकि कथञ्चित अवाच्यत्व भावकी उपलब्धि वहाँ देखी जा रही है। सभी वस्तु व्यञ्जन पर्यायकी दृष्टिसे तो वाच्य हैं और अर्थपर्यायकी दृष्टिसे अवाच्य है ऐसी स्याद्वादियोंने व्यवस्था बनायी है अन्यथा प्रमाण नहीं बन सकता। वस्तु अगुरुलघुत्वके सद्गुण हानि वृद्धिकी दृष्टिसे प्रतिक्षण षड्गुण हानि वृद्धिरूपसे परिणाम रही है। उसको स्पष्टतया किन शब्दोंमें कहा जाय? प्रतिक्षण जो कुछ हो रहा है वह कथञ्चित् अवाच्य है, किन्तु वस्तुके सम्बन्धमें जो स्पष्ट पर्यायें हो रही हैं वे तो सब वाच्य बनती हैं। इस तरह वाच्यता और अवाच्यता का स्याद्वाद ही हल सुलझाता है, इस प्रकार अवयव अवयवी आदिकका अन्यत्व आदिकका एकान्त निराकरण करके अब यद्यपि निराकरणसे यह सिद्ध हो गया कि अन्यत्व और एकत्वके विषयमें अनेकान्तकी व्यवस्था सही है फिर भी प्रतिवादियोंके चित्तमें रहने वाली दुराशङ्काका निषेध करनेके लिए एक बड़ी दृढ़ताका निश्चय करने की इच्छा रखते हुए आचार्यदेव कहते हैं।

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः ॥ ७१ ॥

संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा ॥ ७२ ॥

द्रव्य और पर्यायका कथंचित् एकत्व व कथंचित् नानात्व—द्रव्य और पर्यायमें कथञ्चित् ऐक्य है क्योंकि द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न आधारोंमें नहीं पाये जाते, फिर भी आखिर वह परिणाम विशेष है और वहाँ शक्तिमान और शक्तिका व्यपदेश है, संज्ञा विशेष है, संख्या विशेष है, उनके निजका स्वलक्षण भी विशेष है, भिन्न-भिन्न है और उनका प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न है, इस कारण उनमें नानापन है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर ऐक्य और नानापन वे सर्वथा नहीं कहे जा सकते। इस कारिकामें द्रव्य शब्दका मतलब है गुणी सामान्य और उपादान कारणका और पर्याय शब्दसे मतलब है गुण-परिणति व्यक्ति, व कार्यभूत द्रव्योंका। स्वभाव और स्वभावकी अवस्था इन दोनोंमें अभेद है। यों कि द्रव्य और पर्याय एक ही वस्तु है। यद्यपि उनमें भेद प्रतिभास हो रहा है फिर भी भिन्नता नहीं है, यही बात अनुमान प्रयोगसे भी सिद्ध होती है कि द्रव्य और पर्याय एक वस्तु है प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्नता होनेसे। जिसका प्रतिभास भेद हो तिसपर भी अभिन्न हो तो वह एक कहलाता है, जैसे वेद्य वेदक ज्ञान इनमें प्रतिभास भेद होता रहता है। वेद्याकार कुछ और है वेदकाकार कुछ और है, यों प्रतिभास भेद होनेपर भी ये दोनों भिन्न-भिन्न नहीं हैं, अभिन्न हैं इसी प्रकार रूपादिक द्रव्य ये भी भिन्न-भिन्न नहीं हैं। और मेचकज्ञानमें, चित्रज्ञानमें अनेक आकार प्रतिभासित होते हैं फिर भी वह ज्ञान एक है। तो जैसे उस ज्ञानमें प्रतिभास और नाना ज्ञेयाकार ये अभिन्नरूपसे रह रहे हैं तो प्रतिभास भेद होकर भी चूंकि इनमें अभिन्नता है अतएव ये सब एक वस्तु कहलाते हैं। इसी प्रकार ये द्रव्य पर्याय भी भिन्न भिन्न नहीं बन पाते हैं, इस कारण ये एक वस्तु हैं। ब्रह्माद्वैतवादी पर्यायको अवास्तविक मानते हैं और उससे भिन्न ही है द्रव्य और वह वास्तविक है ऐसा सिद्धान्त बनाते हैं। और, क्षणिकवादी अवास्तविक द्रव्यसे भिन्न ही है वास्तविक पर्यायको अवास्तविक कहा और उससे भिन्न कोई द्रव्य है जिसे वास्तविक कहा जाता है और दूसरे सिद्धान्त में द्रव्यको अवास्तविक कहा और जो वास्तविक है पर्याय, वह उससे भिन्न चीज है। इस कार दोनों मंतव्योंको शुद्ध करनेके लिये यह जो हेतु दिया गया है कि प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्नता है, इस कारण एक वस्तु है यह सिद्ध होता है।

केवल द्रव्य या केवल पर्याय माननेपर अर्थक्रियाकी असंभवता—उन द्रव्य और पर्यायोंके बीचमें किसी एकका बिल्कुल अभाव माना जाय तो वहाँ अर्थ क्रिया उत्पन्न नहीं हो सकती है क्योंकि द्रव्य, पर्यायमेंसे कुछ भी मात्र एक अर्थक्रियाका कारण नहीं बनता अर्थात् पर्याय नहीं होती, ऐसी कल्पना की जाय तो केवल द्रव्यसे अर्थक्रिया नहीं बनती, क्योंकि केवल द्रव्यमें न क्रम रह सकता है और न यौगपद्य रह सकता है, केवल पर्यायकी तरह। इसी तरह केवल पर्याय भी अर्थक्रियाका कारण नहीं बन सकती। याने द्रव्य कुछ नहीं है, मात्र अवस्था है। ऐसा कहीं होता नहीं है पर कल्पनामें कुछसे कुछ भी कल्पना करली जाय वहां किसीको शंका तो नहीं की जा सकती। कोई केवल पर्याय ही माने तो वह भी अर्थक्रियाका हेतु नहीं बनता, क्योंकि एक पर्यायमें भी क्रम और यौगपद्य सम्भव नहीं हो सकता, केवल द्रव्यकी तरह। यहाँ कोई आशंका रख रहा है कि कैसे कहा कि केवल द्रव्यमें और केवल पर्यायमें क्रम और यौगपद्यका विरोध है। उसका विरोध सिद्ध तो नहीं होता। उस आशंकाका उत्तर यह है कि शंकाकारोंने द्रव्य और पर्यायको सर्वथा एक स्वभाव माना है। अर्थात्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें न क्रमसे अनेक स्वभाव है और न एक साथ अनेक स्वभाव है ऐसा सिद्धान्त माना है केवल द्रव्यवादियोंने और केवल पर्यायवादियोंने। तो द्रव्य और पर्यायमें, जो कि सर्वथा एक स्वभाव है, क्रम और यौगपद्य देखा नहीं जाता। अनेक पर्यायात्मक ही कोई द्रव्य हो, उसमें ही क्रम और यौगपद्यकी उपलब्धि होती है।

प्रतिभासभेद होनेपर भी अव्यतिरिक्तपना रहनेकी संभवताका प्रतिपादन

यहाँ कोई शङ्का करता है कि द्रव्य और पर्याय वास्तविक होनेपर भी उनमें अभिन्नता असिद्ध है। द्रव्य भी वास्तविक रहे, पर्याय भी वास्तविक रहे, पर उनमें अभेद होजाय यह बात सिद्ध नहीं है। जैसे घड़ा आदिक द्रव्य हैं और उनसे रूपादिक पर्यायें भिन्न हैं भिन्न क्यों हैं कि उनमें ज्ञानका प्रतिभासभेद हो रहा है तो चूंकि प्रतिभासभेद होनेसे घड़ा और घडेके रूपादिक ये भिन्न भिन्न हैं तो यों ही द्रव्य और पर्यायमें भी भेद प्रतिभास होता है, इस कारण वे भी परस्परमें भिन्न-भिन्न हैं, घट पट आदिककी तरह। जैसे घट पट ये भिन्न-भिन्न प्रतिभासमें आ रहे हैं। इस कारणसे यह कथन असिद्ध है कि वहाँ अभिन्नता है। ये भिन्न-भिन्न वस्तु हैं। प्रतिभासभेद जहाँ होता है वहाँ एकत्व नहीं रह सकता। इन दोनोंका परस्पर विरोध है, प्रतिभासभेद भी हो और एकत्व भी हो, ये दोनों बातें एक जगह सम्भव नहीं हो सकतीं, ऐसी नैयादिकजन शङ्का कर रहे हैं। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह यौगोंकी शङ्का सम्यक नहीं है, क्योंकि प्रतिभासभेदका एकत्वके साथ विरोध नहीं होता। अनेक स्थल आप को ऐसे प्रमाणसिद्ध मिलेंगे कि जहाँ प्रतिभास भेद तो हो रहा है पर वस्तु एक है। जैसे कि उपयोग विशेषसे रूपादिक ज्ञानोंमें प्रतिभासभेद चल रहा है पर अपने विषय के एकत्वका यह प्रतिभास भेद निराकरण नहीं कर पाता है। एक वस्तु है, मानो एक फल है। उसे जब इंद्रियज्ञानके उपयोगसे देखा तो वहाँ रूप प्रतीत हुआ। जब नासिका इंद्रिय ज्ञानके उपयोगसे समझा तो वहाँ गंध जाना गया। इसी प्रकार अन्य अन्य इंद्रियके उपयोग विशेषसे अन्य अन्य विषय समझे जा रहे हैं। तो प्रतिभास भेद तो बहुत हो गया लेकिन फल वह एक है। एक ही वस्तुमें रूप रस आदिकका प्रतिभास भेद हुआ है और भी दृष्टान्त लीजिए एक ही पुरुष अनेक पुरुष दूरसे किसी वृक्ष को देख रहे हैं तो वहाँ अस्पष्ट ज्ञान हो रहा है। कुछ निकट जानेपर स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। तो उस एक ही पुरुषने दूर और निकटकी सामग्रीके भेदसे एक ही वृक्षके सम्बन्धमें विशद और अविशदका ज्ञान कर लिया है इस कारण यह हेतु असिद्ध नहीं है। प्रतिभास भेद होनेपर भी जहाँ अभिन्नता पायी जाती है वह वस्तु एक कहलाता है। इसमें प्रयुक्त साधन असिद्ध नहीं है। और इस साधनका न विशेषण विरुद्ध भी नहीं है, प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्न है। यह है हेतुका पूर्णरूप। उसमें प्रधान हेतु शब्द तो यह है कि अभिन्न है। उसके साथ विशेषण लगा है कि प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्नता है। द्रव्य और पर्यायमें, इस कारण वह एक वस्तु है, प्रतिभास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भेद विशेषणका अव्यतिरिक्तत्व हेतुके साथ विरोध नहीं है जिससे कि कोई यह शंका रख सके कि प्रतिभासभेद भी कहा जा रहा है और अभिन्नता भी कही जा रही है। प्रतिभास भेद भी है और अभेद भी है इन दोनों बातोंमें विरोध नहीं है।

द्रव्य और पर्यायमें ऐक्य सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त 'प्रतिभासभेदेऽप्यव्यतिरिक्तत्वात्' हेतुमें साध्यसमनामक दोषकी अनुपपत्ति—अब यहाँ नैयायिक शंका करते हैं कि देखिये—अव्यतिरिक्तत्वका अर्थ है ऐक्य। तो जब अव्यतिरिक्तत्व कहो या ऐक्य कहो दोनोंका एक अर्थ है सो यह जो हेतु दिया है वह साध्यके ही समान है। जैसे कोई यह बोले कि इस पर्वतमें वह्नि है अग्नि होनेसे वह्निका भी आग अर्थ है और आगका भी आग अर्थ है तो क्या ऐसा हेतु सही हो सकता है? इसे कहते है साध्यतम हेतु। जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है विनाशधर्मी होनेसे। तो जो साध्यकी बात कही गई है वही हेतुमें कह दी गई है। तो जैसे वह हेतु साध्यका गमक नहीं होता इसी प्रकार द्रव्य और पर्याय एक वस्तु हैं, प्रतिभास भेद होनेपर भी इनमें अव्यतिपिक्तता होनेसे इसमें दिया गया हेतु साध्यके ही समान है अतएव यह साध्यकी सिद्धि करनेमें असमर्थ है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि शंका सही नहीं है, क्योंकि यहाँ जो अव्यतिरिक्तत्व शब्द हेतुमें कहा गया है उसका अर्थ है अशक्यविवेचनता। जिसका किसी भी प्रकार भेद और विभाग न किया जा सके उसे कहते हैं अव्यतिरिक्तत्व जिस द्रव्यमें शक्तिका पर्यायका निराकरण नहीं किया जा सकता कि द्रव्य यही पड़ा रहे, पर्यायको अलग रख दे। तो यों जब उनमें व्यतिरेक नहीं किया जा सकता तो बस जिसमें ऐसी अशक्य विवेचनता है उसको ही अव्यतिरिक्त हेतु बताया गया है। व्यतिरिक्तपना, विवेचन करना, व्यतिरेचन करना, ये सब व्यतिरिक्तत्वके पर्यायवाची शब्द हैं। अलग कर सकनेको व्यतिरेचन कहते हैं और जहाँ व्यतिरेचन न हो उसे कहते है अव्यतिरिक्तत्व। तो द्रव्य और पर्यायमें ऐसा विवेचन नहीं बनता अर्थात् उनको जुदा जुदा नहीं रखा जा सकता इस कारण वह हेतु अव्यतिरिक्तत्व हेतु सही हेतु है। उनका जो भाव है वही अव्यतिरिक्तपन कहलाता है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि जिसके विभाग न किए जा सकें, अशक्य विवेचन हो उसे अव्यतिरिक्त कहते हैं। इस प्रकारकी व्युत्पत्ति होनेसे द्रव्य और पर्यायमें ऐक्यपना है और यह वास्तविक है। यही साध्य इष्ट है और उसकी सिद्धि होती है। हेतु फिर साध्यका साधक कैसे न होगा। यह अशक्य विवेचनत्व हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि विवक्षित द्रव्य पर्यायोंमें कुछ भी किसी अन्य द्रव्यमें ले जानेके लिए शक्यता नहीं है अर्थात् द्रव्य और पर्यायोंमेंसे कुछ भी एक चीज किसी अन्य जगह ले जायी नहीं जा सकती यह बात सबके चित्तमें भली भांति प्रतीति सिद्ध है जैसे वेद्याकार और वेदकाकार वे ज्ञानमेंसे कहीं हटाये नहीं जा सकते। इस कारण इनमें अशक्य विवेचनता है। वेद्याकार और वेदकाकारका जो ज्ञान है वह किसी अन्य ज्ञानमें नहीं लिवाया जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता है और इसमें कोई अन्य निमित्त भी नहीं बन सकता। इस कारण ,वेद्याकार और वेदकाकारको अशक्यविवेचन कहा है। ऐसे ही द्रव्य और पर्यायोंका अशक्य विवेचनत्व है, इस कारण प्रतिभास भेद होनेपर भी द्रव्य और पर्याय एक वस्तु सिद्ध होते हैं।

अयुतसिद्धत्व, अविष्वग्भाव, अशक्यविवेचनत्व आदिसे द्रव्य पर्यायमें ऐक्यकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि वेद्याकार और वेदकाकार ये दोनों तो अयुक्त सिद्ध हैं अर्थात् पृथक-पृथक सिद्ध नहीं हैं इस कारणसे अशक्य विवेचनता पायी जाती है। इस शङ्काके उत्तरमें पूछते हैं कि अयुत सिद्धपनेका अर्थ क्या है ? पृथक सिद्ध न होना याने अभेद होना, तो वे बतलावें कि क्या देशाभेदका नाम अयुत सिद्ध है ? यदि कहेंगे कि दोनों पदार्थोंका एक ही देश होना इस तरहके देशाभेदका नाम अयुत सिद्धपना है तब तो वायु और गर्मी इन दोनोंमें भी अयुत सिद्धपना हो जायगा और अशक्य विवेचनत्व हो जायगा। याने फिर गर्मी और हवा इन दोनोंका कोई विवेचन न किया जा सकेगा। इस कारण देशाभेदका नाम तो अयुत सिद्ध होता नहीं, तब क्या कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध है, अर्थात् वही समय एकका हो और वही समय दूसरेका हो, इस तरह एक ही प्रकारका सम्बन्ध होना यह काला भेद है। क्या इस कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध है ? यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि कालाभेद तो हवा और गर्मी दोनोंमें देखा जाता है। जिस ही कालमें हवा है उस ही कालमें गर्मी है, किन्तु हवा व गर्मी एक तो नहीं हो गये। तो कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध नहीं है। यदि कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध होता तो गर्मी और हवामें कभी विवेक और विवेचन नहीं किया जा सकता था। तब क्या स्वभावका अभेद होना अयुत सिद्ध कहलाता है ? यह पक्ष भी युक्त नहीं है। क्योंकि विरोध है। यहाँ द्रव्य पर्यायमें जो स्वभावका अभेद कहा जा रहा है तो क्या सर्वथा स्वभावका अभेद माना जाय या कथञ्चित् स्वभावका अभेद माना जाय ? यदि कहो कि सर्वथा स्वभावका अभेद माना जाय तब तो यह अयुक्त है, क्योंकि यहाँ विरोध देखा जाता है स्वभावका अभेद और द्वित्वमें कि यह पवन है, यह गर्मी है। इस तरहके द्वैधीकरणमें तो विरोध पाया जाता। यदि कहो कि कथञ्चित् स्वभावाभेद है पवन और गर्मीमें तो यही कहलाया कथञ्चित् अशक्य विवेचनपना, अर्थात् उसके भेद करना अशक्य है, अतएव इस प्रकारका वहाँ भेद पाया जाता है। और कथञ्चित् स्वभावाभेदका ही नाम है अविश्वाभाव। यही कहलाता है समवाय। इस प्रकार तो स्याद्वादमतकी ही सिद्धि हो गयी। अन्यथा अर्थात् कथञ्चित्पना लगाकर यह सब वर्णन न किया जाय तब समवाय ही सिद्ध नहीं होता। यहाँ नैयायिक कहते हैं कि देखिये अयुत सिद्धपनेका अर्थ है कि पृथक अनाश्रयका आश्रयीपना होना और पृथक गतिमान न होना इसका नाम अयुतसिद्ध है। उत्तर इसका यही है कि यह भी जो कुछ कहा जा रहा है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह अशक्य विवेचनपनेसे भिन्न बात नहीं कही जा रही है। इस कारण जो उदाहरण दिया गया है अनुमानमें वह साध्य साधन नहीं है और हेतु भी साध्यके समान न रहा। प्रकृत अनुमान प्रयोगमें रूपादिक द्रव्योंका उदाहरण भी मिल जाता है। प्रकृत अनुमान प्रयोग यह है कि द्रव्य और पर्याय एक वस्तु है। प्रतिभासभेद होनेपर भी अव्यतिरिक्त होनेसे अतिरिक्त भिन्न न होनेसे। जैसे रूपादिक द्रव्य। रूपादिक द्रव्यों में समवाय अशक्य विवेचन है, अर्थात् रूप और द्रव्य इनका जो सम्बन्ध है उसका विवेचनपना होनेसे इस अव्यतिरिक्त साधनका सद्भाव यहाँ भी है और ऐक्य है और एक वस्तुपना सिद्ध होता है, इस कारण यह उदाहरण भी युक्त है।

द्रव्य और पर्यायमें अभेदके साधक हेतुकी प्रमाणाबाधितता— शङ्काकार कहता है कि धर्मीको ग्रहण करने वाले प्रमाणसे यह बाधित हो जाता है अभीष्ट तत्त्व, अतएव कालात्ययापदिष्ट दोषसे दूषित हेतु रहेगा। धर्मीका सम्बन्ध है द्रव्य और पर्याय। जब कुछ भी तत्त्व एक प्रधान उद्देश्य विधेयके रूपमें बोला जाता है तब वही कहलाता है धर्मी। ऐसे धर्मीको ग्रहण करने वाले प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधा आती है, अतएव स्याद्वादियोंका दिया हुआ हेतु कालात्ययापदिष्ट दोषसे दूषित है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी सत्य नहीं है, क्योंकि धर्मीको ग्रहण करने वाले प्रमाणके द्वारा कथञ्चित् भिन्न धर्मीका ही ग्रहण किया गया है, सर्वथा भिन्न द्रव्य पर्याय हो ही नहीं सकती। द्रव्य कहीं अलग रहे, पर्याय अलग हो जाय ऐसी भिन्नता द्रव्य और पर्यायमें असम्भव है। जैसे कि हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतोंमें सर्वथा भिन्नता रहेगी। शङ्काकार कहता है कि द्रव्य और पर्याय ये दोनों भिन्न भिन्न द्रव्य हैं। उनमें अभेद क्यों जबरदस्ती सिद्ध करनेका प्रयास किया जा रहा है? भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें द्रव्यपना और पर्यायपना सम्भव नहीं होता। जैसे कि हिमालय और विन्ध्याचल ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, तो इनमें कोई द्रव्य कहलाये और कोई पर्याय यह नहीं हो सकता। शङ्काकार कहता है कि द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न भिन्न हैं तो उनमें अभेद कैसे हो जायगा? सर्वथा भिन्न भिन्न पदार्थोंमें अभेद माननेपर विरोध आदिक अनेक दोष उत्पन्न होंगे। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि जब भेद और अभेद रूपसे पदार्थ पाये जाते हैं तब उनमें विरोध आदिककी बात कैसे सम्भव हो सकती है? जैसे चित्रज्ञानमें अनेकाकार प्रतिभासित हो रहे हैं उन आकारोंका परस्परमें तो कुछ भी विरोध नहीं है। जैसे चकज्ञान विरोध आदिक दोषोंसे रहित है अथवा सामान्य विशेषवान या सामान्य ही विशेष तदवान पदार्थ उसमें भी कोई विरोध आदिक नहीं है। विरोध वैयधिकरण संशय, व्यतिकर, संकर, अनवस्था, अप्रतिपत्ति और अभाव, ये सामान्य विशेषात्मक भेदाभेदात्मक वस्तुमें घटित नहीं होते हैं, क्योंकि उनकी उस ही तरहसे प्रतीति हो रही है। जब ये भेदरूप और अभेदरूपसे जाने ही जा रहे हैं तब उनमें दोषकी क्या सम्भावना है? द्रव्य और पर्याय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में भेदाभेदरूपसे प्रतीति होना असत्य नहीं है, क्योंकि सदाकाल अन्यथाप्रतीतिका अभाव है। द्रव्य और पर्यायकी एकता होनेपर विरोध आदिकका उपालम्भ देना यह बुद्धिमान के मनको रंच भी प्रीतिकर नहीं होता है—विवेकी पुरुषोंकी दृष्टिमें विरोध आदिक दोषकी बात रंच भी नहीं आती है।

द्रव्य और पर्यायमें कथंचित् एकत्वका निर्णय—यदि वस्तुमें धर्मोंका एकत्व माननेमें विरोध आदिक दोष कहा जायगा तो वर्णादिकका भी अभाव बन बैठेगा। और, वर्णादिक मानका भी अभाव हो जायगा। द्रव्य ही एक है, वर्णादिक नहीं है, क्योंकि विचार करनेपर वर्णादिक युक्तिमें नहीं उतरते हैं अथवा वर्णादिक ही अनेक हैं, द्रव्य कुछ नहीं है, उसका भी विचार करनेपर पोषण नहीं मिलता है। यों न केवल द्रव्य है, न केवल पर्याय है, किन्तु एकत्व और अनेकत्वका जो एकान्त किया जा रहा है वह एक दूसरेपर विजय नहीं कर सकता, क्योंकि जितने दूषण एकत्ववादी भिन्नवादीको देंगे उतने ही दूषण भिन्नवादी एकत्ववादीको दे सकते हैं, क्योंकि निर-पेक्ष द्रव्य पर्याय ये भाव स्वभावके प्रतिबन्धसे हैं अर्थात् केवल द्रव्य अथवा केवल पर्याय नहीं, किंतु पदार्थके स्वरूपके सम्बन्धी हैं ये दोनों, इस कारणसे दोनों प्रकारका एकान्त स्याद्वादियोंके द्वारा निराकृत किया गया है। द्रव्यका एकत्व जो भावस्वभाव है यदि एकान्ततः माना जाय तो उसमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे विरोध होता है। वर्णादिक पर्यायें जो एकान्त स्वभावरूप हैं उनका अबाधित प्रत्यभिज्ञानके द्वारा निरा-करण हो जाता है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि द्रव्य और पर्यायमें कथंचित् ऐक्य है।

द्रव्य और पर्यायमें कथंचित् भेदका विवरण—अब द्रव्य और पर्यायमें भेद किस प्रकारसे सिद्ध है यह कहा जा रहा है। देखिये! जो कुछ यहाँ भिन्न लक्षण प्रतीत हो रहा है और एक दूसरेसे कुछ विशेषताको लिए हुए जुदे स्वभाव वाले और उनका परिणमन, उनकी संज्ञायें जुदी-जुदी, उनकी संख्यायें भी जुदी और उनकी दृष्टिका प्रयोजन भी जुदा-जुदा है इन बातोंसे द्रव्य और पर्यायोंमें भिन्न लक्षणता सिद्ध होती है। जैसे कि रूपादिक एक ही फलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं। अब यह देखो कि वे रूप, रस, गंध, स्पर्श क्या उस फलसे जुदे हैं अथवा वे सब फलमें सर्वथा एकरूप हैं? विचार करनेपर वहाँ उत्तर मिलेगा कि रूपादिक प्रयोजन संज्ञा, संख्या, परिणमन आदिक भेदसे उनमें भेद है और उनके आधारभूत वस्तु कोई अन्य नहीं है। इस तरह द्रव्य और पर्याय भिन्न लक्षण वाले हैं। इस अनुमानसे परस्पर विविक्त स्व-भाव वाले, लक्षण वाले द्रव्य पर्याय हैं, पर उनमें द्रव्यका तो है अनादि अनन्त एक स्वभाव और है उसका स्वाभाविक परिणाम, किन्तु पर्यायका लक्षण है सादि सान्त और अनेक स्वभावके परिणाम वाला, इस कारण भेद सिद्ध करनेके लिए जो परिणाम विशेषात् हेतु दिया गया है वह हेतु असिद्ध नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संज्ञा व संख्याके भेदसे भी द्रव्य व पर्यायमें भिन्नत्वकी सिद्धि—द्रव्य, पर्यायका व्यतिरेक सिद्ध किया जानेसे शक्ति और शक्तिमान भावकी भी सिद्धि हो जाती है। शक्ति तो हुआ पर्यायरूप, शक्तिमान हुआ द्रव्यरूप। यद्यपि शक्ति भी शाश्वत होती है और वह परिणति स्वरूप नहीं है, किन्तु पर्यायका अर्थभेद भी है जो कि शक्ति मान तो है एक पूर्ण द्रव्य और उसके भेद करके शक्ति शब्दका प्रयोग है सो शक्ति पर्यायरूप हुआ। यों शक्तिमान और शक्तिभाव भी प्रसिद्ध होता है। परस्परमें पृथक भावरूपसे रहने वाले स्वभाव संज्ञा संख्या विशेष वाले द्रव्य पर्याय होते हैं। द्रव्यमें स्वभाव दूसरा है, पर्यायमें स्वभाव दूसरा है। द्रव्य एक है पर्याय अनेक है। तो द्रव्यमें द्रव्य है, पर्यायमें पर्याय है, इस प्रकार अन्वर्थक संज्ञा प्रसिद्ध है। द्रव्यको ही द्रव्य कहते हैं। पर्यायको ही पर्याय कहते हैं। जो द्रव्यका अर्थ है वह द्रव्यमें घटित होता है। द्रव्य कहते उसे हैं कि जिनसे पर्यायें प्राप्तकी। जो पर्यायें प्राप्त कर रहा है अथवा जो पर्यायें प्राप्त करेगा उसे द्रव्य कहते हैं। तीनों ही कालका परिणमन जिसमें पाया जाय उसका नाम द्रव्य है। पर्यायका अर्थ है परिणमन, भेदरूप हो, वे सब पर्यायें हैं। तो द्रव्य व पर्यायमें संज्ञाका भेद है, संख्याका भी भेद है। द्रव्यमें एकत्वकी संख्या है, पर्यायमें बहुत्वकी संख्या है। द्रव्य एक है और पर्याय अनेक है। इसी प्रकार अनुपचरित संख्या भी यह बात सिद्ध करती है कि द्रव्य और पर्यायमें ऐक्य नहीं है। इस प्रकार जो कारिकामें कहा है कि संज्ञा संख्याके विशेष होनेसे द्रव्य और पर्यायमें नानापन सिद्ध होता है सो यह बात समीचीन है।

प्रयोजन भेदसे द्रव्य व पर्यायमें भिन्नत्वकी सिद्धि—अब द्रव्य व पर्याय का प्रयोजन भी देखिये ! द्रव्य तो है एकत्व अथवा अन्वयके ज्ञानके कार्य वाला तो द्रव्यके सम्बन्धमें एकत्वका ज्ञान होता है और यह सदाकाल अन्वित है इस प्रकार अन्वयका ज्ञान होता है। यों द्रव्यका कार्य है एकत्व अथवा अन्वयका ज्ञान कराना। अथवा प्रयोजन यह है कि द्रव्यका एकत्व और अन्वय समझकर उस योग्य अपनी कार्य साधना, पर्यायका कार्य है अनेकत्व अथवा व्यावृत्तिका ज्ञान कराना अर्थात पर्यायके सम्बन्धमें अनेकत्व और व्यावृत्तिरूप ज्ञान होता है। इस प्रकार उनमें परस्पर विविक्त स्वभावका प्रयोजनपना है यह बात भी असिद्ध नहीं है। अब कालकी भिन्नता भी देखिये ! द्रव्य तो है तीन कालमें रहने वाला और पर्याय है केवल वर्तमान कालमें रहने वाला। तो इस प्रकार उनका भिन्नकालपना भी सिद्ध है। भिन्न प्रतिभास जैसे प्रयोजन आदिक भेदसे सिद्ध हो जाते हैं अथवा प्रयोजन आदिकका भेद सिद्ध करता है, इसी प्रकार यह भिन्न कल्पना भी प्रयोजन भेदका साधक है। जैसे अध्यात्म मार्गमें पर्यायको क्षणक्षणवर्ती समझकर यह प्रयोजन सिद्ध किया जाता है कि जो अनित्य है उसमें रुचि न रखना उससे उपभोग हटाकर शाश्वत स्वभावमें रुचि करना तो कितने बडे भारी प्रयोजनका कारण बन रहा है द्रव्य और पर्यायका बोध। तो द्रव्य व पर्याय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में प्रयोजन भेद भी है इस कारण द्रव्य और पर्यायमें नानापन है। तो जब परस्पर विविक्त स्वभाव परिणमन संज्ञा, संख्या, प्रयोजन, आदिक सिद्ध होते हैं तब इस प्रसिद्ध हेतुसे द्रव्य पर्यायका भिन्न लक्षणपना सिद्ध हो। अर्थात् परस्पर विविक्त स्वभाव है, संज्ञा है, संख्या है, प्रयोजन है, इस कारणसे द्रव्यभाव जुदा है और पर्याय भाव जुदा है। इस तरह स्वलक्षणकी विशेषतासे द्रव्य और पर्यायमें भिन्नपना सिद्ध होता है। स्वलक्षणका अर्थ ही यह है कि जो असाधारण लक्षण है वह स्वलक्षण है। उसका जो विशेष है वह लक्ष्यका अविनाभावी होता है। यह लक्षण है द्रव्यपर्यायरूप। उस द्रव्य पर्यायरूपके बिना यह स्वलक्षण नहीं हो सकता है। द्रव्यपर्यायरूपके अविनाभावीपनसे ही स्वलक्षणमें लक्षणपनेकी उत्पत्ति होती है।

अनुपसंहार्यमें भी असाधारणताके कारण स्वलक्षणत्वकी प्रसिद्धि— अब यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि वस्तुका लक्षण वह है जो असाधारणरूप है। यही तो कहा गया कि वस्तुका जो असाधारणरूप है उसे लक्षण बताया जानेपर जब यह कहा जाय कि सर्व भिन्न है ज्ञेय होनेसे, तो यह अनुपसंहार्य है तो भी इसमें लक्षणपनेका प्रसंग आ जायगा। अनुपसंहार्य उस हेतुको कहते हैं कि जिस हेतुका कोई पक्ष भी नहीं है और विपक्ष भी नहीं है। तब अन्वय व्याप्ति द्वारा सपक्षमें जिसका उपसंहार नहीं हो सकता और व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा जिसका विपक्षमें उपसंहार नहीं किया जा सकता किन्तु हेतुका सद्भाव पक्ष पक्षमें ही बताया जा सकता है उस हेतुको अनुपसंहार्य कहते है याने सपक्ष और विपक्षसे रहित हेतु अनुपसंहार्य कहा जाता है तो इसमें जब सर्वको पक्ष बना लिया कि सभी भिन्न हैं प्रमेय होनेसे तो अब सपक्ष विपक्ष कुछ रहा नहीं। सबको छोड़कर अन्य कुछ रहा क्या जिसे सपक्ष अथवा विपक्ष बनाया जाय? तो जब सब ही पक्षमें आ गया और सपक्ष विपक्षका अभाव हो गया तो असाधारणता आनेके कारण इसे भी लक्षण मान लेना पड़ेगा अर्थात् यह भी लक्ष्यका गमक बन बैठेगा। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि कर्मरूपसे प्रमितिको उत्पन्न करनेरूप जो प्रमेयपना है वह यद्यपि अनुपसंहार्य है तो भी लक्षण बन जाता है। उसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है। प्रमेयत्वका अर्थ यह है कि जो प्रमेय हो याने कर्मरूपसे प्रमिती क्रियाका जनक हो उसे उस प्रमेयका यद्यपि यहाँ अनुपसंहार्यत्व हो रहा है अर्थात् सपक्ष विपक्ष रहित है तो भी लक्षण बननेमें कोई विरोध नहीं है। सत्त्वकी तरह। जैसे सभी दार्शनिक ऐसा प्रयोग करते हैं अपने अपने इष्ट मन्तव्यके अनुसार कि सभी पदार्थ नित्य हैं अथवा सभी अनित्य हैं, उसमें सत्त्वादिकका हेतु देते हैं तो वहाँपर भी हेतु अनुपसंहार्य है फिर भी लक्ष्यका गमक है। वस्तुका लक्षण सत् कहा गया है। सूत्रकारने भी कहा है—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त हो वह सत् है

साध्याविनाभावी हेतुमें अनुपसंहार्यत्व होनेपर भी प्रामाण्यकी उप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पत्ति तथा विपक्षव्यावृत्तिका भी दिग्दर्शन—यहाँ नैयायिक शंका करते हैं कि देखिये ! विपक्ष इसमें सिद्ध है इस कारणसे सत्त्वको अनुपसंहार्य नहीं कह सकते। वह इस प्रकार है कि जो सत् नहीं है वह वस्तु नहीं है। साधनके अभावमें साध्यका अभावरूप यहाँ विपरीत पद्धति द्वारा व्याप्ति की गई है। किसलिए कि लक्ष्य और लक्षणके बीच एकका अभाव होनेपर दूसरेका भी अभाव होता है यह समझानेके लिए तो जो सत् नहीं है वह वस्तु नहीं है। जैसे खरगोशके सींगको लो। यहाँ विपक्ष असत् सिद्ध हो गया। सत पक्ष है तो उसका उल्टा असत हुआ, वह विपक्ष बन गया। तो जब असत् रूप विपक्षकी सिद्धि हो रही तो सत्त्वको अनुपसंहार्य कैसे कहा जा रहा ? प्रयोग यह हुआ सर्व वस्तु सत्त्वात्। तो यहाँ सत्का विपक्ष है असत् और असत्का विपक्ष है सत्। तो विपक्षकी सिद्धिये गयीं। फिर अनुपसंहार्य हेतु कैसे रहा? क्योंकि अनुपसंहार्य हेतु उसे ही कहते हैं कि जो पक्षमें तो रहे पर सपक्ष और विपक्षसे रहित हो। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो इस ही कारण प्रमेयत्वको भी अनुपसंहार्य मत कहो। सर्व भिन्न प्रमेयत्वात्। यही तो प्रकृतमें कहा जा रहा था। तो भिन्न सिद्ध सिद्ध किया जा रहा था उसका विपक्ष हुआ जो भिन्न न हो। तो भिन्नपनेका अनाश्रयभूत जो खरविषाण है वह असत् है यह बात सही है और असत् होनेके कारण भिन्नपनेका अनाश्रयभूत भी है। तो भिन्नपनेका अनाश्रयभूत असत् खरविषाण कर्मरूपसे प्रमिति क्रियाका जनक नहीं है। अतः अप्रमेय है। लो अब विपक्षका सद्भाव बन गया। इस कारणसे प्रमेयत्व क्रियाको भी अनुपसंहार्य नहीं कह सकते : सर्व पदार्थ भिन्न हैं प्रमेय होनेसे। जो अप्रमेय है वह भिन्नपनेका आश्रयभूत नहीं होता। जैसे कि खरविषाण, अथवा जो भिन्नपनेका अनाश्रयभूत है वह अप्रमेय होता है। यों विपक्षका सद्भाव होनेसे प्रमेयत्व हेतुको अनुपसंहार्य नहीं कह सकते।

"सर्व" पक्षमें रहने वाले हेतुमें भी विपक्षव्यावृत्तिका दिग्दर्शन—शंकाकार कहता है कि सर्व शब्दके द्वारा तो सत् और असत् दोनोंका ही ग्रहण हो गया। फिर यहाँ खरविषाणको विपक्ष कैसे बताया जा रहा ? सर्वमें सत् एक आ गया। असत् भी आ गया। खरविषाण असत् है वह भी पक्षमें ही गर्भित हो गया। उसे विपक्ष क्यों कहा जा रहा है? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सत् इस शब्दके ग्रहणसे भावको भी स्वीकार किया गया है और भावान्तर स्वभावरूप प्रागभाव आदिकको भी स्वीकार किया गया है। इस कारणसे किसी भी असत्को उस सत्त्वका विपक्षपना प्राप्त नहीं होता। याने सत्त्वके कहनेसे केवल भाव भाव ही ग्रहणमें नहीं आता, किन्तु भावान्तर स्वभावरूप जिसे प्रागभाव आदिक कहते हैं वह भी ग्रहणमें आ जाता है। इस कारण सत्त्वका विवक्षपना न होगा। दूसरोंके द्वारा माना गया जो उत्पादव्यय ध्रौव्यसे रहित विकल्प बुद्धिसे प्रतिभासितको विपक्ष मान लेनेपर सत् और असत्के वर्गका अभावभूत अर्थात् जो न सत् जातिमें आता है और न असत् जातिमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आता है ऐसा शून्यवादीके द्वारा माना गया जो अप्रमाण विषय है उसको विपक्षपना हो जायगा, क्योंकि अब सत्त्व और प्रमेयत्वके विषयमें किसी भी प्रकारका अन्तर न रहा।

पक्षाव्यापी हेतुकी असाधारणतासे लक्षणत्वकी अनुपपत्ति—उक्त प्रकार सर्वको भिन्न सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त प्रमेयत्व हेतुमें अनुपसंहार्यत्वका होना नहीं बना जिससे कि पक्षव्यापी ही असाधारणके वस्तुलक्षणपना सिद्ध न हो, क्योंकि विद्यमान हो चाहे अविद्यमान हो, ऐसा जो कोई भी सपक्ष और विपक्ष है उस में अविद्यमान लक्षण जो पक्षव्यापी है उसे ही असाधारण कहा गया है। पक्षव्यापी हा असाधारण वस्तु लक्षणपना बताया जानेके कारण जो पक्षमें व्यापक नहीं है उसका असाधारणपना कोई कहे तो वह निराकृत हो जाता है, क्योंकि उस पक्षके एक देशमें व्यापक लक्षणके यद्यपि असाधारणपना है अर्थात जो सबमें न जाय, कुछमें रहे उसे ही तो असाधारण कहते हैं। तो यों पक्षके एक देशमें रहने वाले लक्षणका असाधारणपना आनेपर भी लक्षणपना नहीं बनता है, क्योंकि वहाँ अव्याप्ति पाई जा रही है। लक्षण वह समीचीन होता है कि जिसमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव ये कोई दोष न हों। जैसे किसीने कहा कि पशुका लक्षण सींग है तो यहाँ लक्षण कहा गया है सींग और लक्ष्य बताया गया है पशु, सो यह लक्षण लक्ष्यके एक देशमें रहता है अर्थात सींग सभी पशुओंमें न रहकर किन्हीं पशुओंमें रहता है। यों पक्षके एक देश में रहने वाला लक्षण यद्यपि असाधारण तो है मायने पक्षियोंमें, मनुष्योंमें, अनेकोंमें पाया नहीं जाता तो यों असाधारणपना होनेपर भी सींग पशुका लक्षण तो न बन जायगा। यदि पक्षके अव्यापकको भी लक्षण मान लिया जायगा तो वहाँ धोखा और विडम्बना ही हाथ लगेगी। तो जो पक्षमें व्यापक है वह यद्यपि असाधारण है तो भी लक्षण नहीं बन सकता है। जैसे उष्णपना अग्निका असाधारण लक्षण है तो वह भी लक्षण नहीं बनता, क्योंकि वह लक्ष्यके एक देशमें रह रहा है। देखिये! वह उष्णपना समस्त अग्नि व्यक्तियोंमें नहीं है। जैसे प्रदीप प्रभा, प्रकाश आदिकमें, जहाँ कि उष्ण स्पर्श प्रकट नहीं है उनमें उष्णताका अभाव है। जो अनुद्भूत हो उसे लक्षण नहीं कहा जा सकता। जो प्रगट नहीं है उसे किसका लक्षण कहा जायगा? अप्रसिद्ध होनेसे। यदि उष्ण स्पर्शके योग्य है इस तरह अग्निका लक्षण कहा जाय तो इसमें कोई दोष न होगा, क्योंकि पक्षमें व्यापने वालेको असाधारण कहा गया है, पक्षव्यापी को असाधारणपना कहा जानेके कारण अविद्यमान विपक्षमें न रहने वाले हेतुका सपक्षमें भी रहना असम्भव है इस कारण असाधारणता समझ ही लेनी चाहिये।

पक्षव्यापी साध्याविनाभावी हेतुके सपक्ष, विपक्षका अभाव होनेपर भी लक्षणत्वकी उपपत्ति—और भी देखिये! विद्यमान सपक्षमें भी न रहनेवाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हेतुका विपक्ष असम्भव है, सो पक्ष व्यापि असाधारणके लक्षणपना विरोधको प्राप्त नहीं होता जैसे कि शब्दको अनित्यपना सिद्ध करनेमें श्रावणत्व हेतु असिद्ध और विरुद्ध नहीं होता। वह श्रावणत्व हेतु विद्यमान अनित्य घट आदिक सपक्षमें नहीं है। अनुमान प्रयोग बनाया गया है कि शब्द अनित्य है श्रावण होनेसे अर्थात् स्रोत्र इन्द्रिय द्वारा सुननेमें आनेसे। तब अनुमान प्रयोगमें सपक्ष भी कहलायेगा। जो जो पदार्थ अनित्य हैं, जहाँ जहाँ साध्य पाया जाता हो उसे सपक्ष कहते हैं और जहाँ साध्य न पाया जाय उसे विपक्ष कहते हैं। तो जो जो भी पदार्थ अनित्य होंगे सपक्ष सो सपक्षमें रहना चाहिए हेतुको लेकिन ये घट आदिक अनित्य पदार्थ तो सपक्ष हैं किन्तु उनमें श्रावणत्व नहीं पाया जाता। दूसरी बात यह है कि इस अनुमान प्रयोगका विपक्ष होना चाहिए नित्य एकान्त। सो नित्य एकान्त कोई विपक्ष नहीं है। कदाचित् शङ्काकार यह कहे कि शब्दमें रहने वाला जो शब्दत्व है वह तो नित्य एकान्त है, सो शङ्काकार ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि शब्दत्व भी सदृश परिणाम लक्षण वाला है। जातियाँ सदृश परिणामको निरखकर बना करती हैं तो शब्दत्व जाति भी सदृश परिणाम है, अतएव वह भी कथञ्चित् अनित्य है तो नित्य एकान्त कोई चीज सम्भव ही नहीं है अतः इस अनुमानका विपक्ष कोई मिलेगा ही नहीं। शङ्काकार यदि यह सोचे कि शब्दका अभाव ही विपक्ष बन जायगा, अनुमान प्रयोग यह है कि शब्द अनित्य है स्रोत्रइन्द्रियका विषय होनेसे, तो यहाँ अनित्याविपक्ष है नित्य एकान्त और अनित्य एकान्त सम्भव नहीं बताते तब शब्दका ही अभाव होना यही विपक्ष बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी नहीं कह सकते क्योंकि शब्दका जो अभाव है वह तुच्छाभावरूप न होगा, किन्तु अन्य भावके स्वभावरूप होगा। तो शब्दका अभाव शब्दान्तरके स्वभावरूप है अथवा शब्दको छोड़कर अन्य पदार्थोंके स्वभावरूप है अतः वहाँ इतरेतराभाव है और प्रध्वंसाभाव भी है सो वह सब अनित्य होनेसे। अब शब्दाभाव भी पक्षसे भिन्न व रहा। नित्य अनित्य जितने हैं वे सब विपक्ष हो ही नहीं सकते। और दूसरी बात यह है कि जो शब्दके अभावको यहाँ विपक्ष कह रहे हो अर्थात् अशब्दात्मक तत्त्वको तो वह तो अश्रावण होनेसे ठीक ही बन गया। लो अब श्रावणपना शब्दका लक्षण बन गया क्योंकि शब्दाभावमें श्रावण्यता है नहीं तो शब्दका लक्षण स्रोत्रइन्द्रियका विषयभूत होना यह ठीक लक्षण बन गया, यदि शब्दात्मकता न हो तो श्रावणपना कभी उत्पन्न नहीं हो सकता, इस प्रकार अन्यथानुत्पत्तिरूप लक्षण है, वह पक्षमें व्याप रहा है और वह निर्दोष है, क्योंकि यह लक्षण लक्ष्य शब्दके बिना उत्पन्न नहीं हो रहा है। शब्द न हो तो श्रावणत्व नहीं रह सकता, अतः शब्दका लक्षण श्रावणपना युक्त ही है।

द्रव्य और पर्यायका लक्षण—अब द्रव्य और पर्याय इन दोनोंके लक्षणकी चर्चा कर रहे हैं। द्रव्यका लक्षण तो है गुण पर्यायवान होना, सूत्रकारने भी कहा है गुण-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायवद् द्रव्यं। द्रव्य गुण पर्याय वाला होता है। तो द्रव्य गुण पर्याय वाला है यह बात इस तरह सिद्ध होती कि यहाँ क्रमभावी विचित्रता और अक्रमभावी विचित्रता पायी जा रही है। द्रव्यमें एक ही साथ रहने वाली अनन्त शक्तियां हैं जो द्रव्यके साथ हैं। अनादि अनन्त हैं तथा क्रमसे होने वाली परिणतियां भी निरन्तर चलती रहती हैं। जिसका आदि है और अन्त है। अन्त होनेपर भी तुरन्त ही परिणति होती रहती है। यों क्रमभावी और अक्रमभावी विचित्र परिणाम न माननेपर द्रव्यत्व ही लक्षण गुणपर्ययवद् द्रव्य जो कहा गया है वह सयुक्त ही है। इसी प्रकार द्रव्यके अभावमें गुण पर्ययवानपना भी नहीं बनता गुण पर्यायके बिना जैसे द्रव्य लक्ष्यमें नहीं आता उसी प्रकार द्रव्यके बिना गुण पर्यायकी भी उपपत्ति नहीं बनती। अतः गुण पर्ययवद्द्रव्यं सही लक्षण है।

द्रव्यलक्षणकी निर्दोषता—शंकाका यदि ऐसी आशंकार रखे कि देखिये कार्य द्रव्य तो पर्याय है फिर वहाँ द्रव्यका लक्षण कैसे घटित होगा? द्रव्यका लक्षण किया है गुण पर्ययवद् द्रव्यं। जो गुण पर्याय वाला हो सो द्रव्य कहलाता है। अब कार्य द्रव्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये सभी स्कंध ये कार्य द्रव्य है। इनमें गुण पर्यायवानपना तो नहीं पाया जाता। वे तो केवल पर्यायरूप है। इस शंकाके समाधानमें यह समझना चाहिए कि कार्य द्रव्य जो घट आदिक पदार्थ हैं उनमें भी गुणवत्ता और पर्यायवत्ता पाई जाती है। गुण तो घट आदिकमें रूप, रस गंध, स्पर्श आदिक शक्तियाँ अब भी चल रही हैं और नया पुराना आदिक जो व्यक्त परिणतियाँ हैं वे पर्याय कहलाती हैं। यों गुण पर्यायवान द्रव्य कहलाता है। तब गु पर्ययवद्द्रव्यं लक्षण अव्याप्ति दोषसे दूषित नहीं है। अतिव्याप्ति दोष तो तब लगता कि द्रव्य तो हो कोई, किन्तु वहाँ गुणपर्यायवानपना न पाया जाय सो घटादिक द्रव्योंमें गुण पर्यायपना पाया जाता है अतएव अव्याप्ति दोष नहीं लगता। इसी प्रकार अतिव्याप्ति दोष भी नहीं है। कोई कहे कि रूप, रस, गंध, स्पर्श जो क्रमसे उत्पन्न होते हैं वे पर्यायें हैं। उनमें गुण पर्यायपना कैसे पाया जायगा? सो भी नहीं कह सकते, क्योंकि जो स्पर्श आदिक विशेष हैं जैसे मृत्पिण्डसे स्थास, कोस, कुशूल, घट आदिक अवस्थायें बनी हैं वे क्रमसे हैं। ऐसे ही उन स्पर्शादिक सामान्योंमें जो कि सहभावी हैं उन केवल गुणोंमें गुण पर्यायित्व लक्षणका अभाव है। अतिव्याप्ति दोष तो तब कहलाता कि द्रव्यसे अतिरिक्त अन्य पदार्थोंमें भी यह लक्षण पहुंचे। अलक्ष्यमें भी लक्षण पहुंचनेका नाम अतिव्याप्ति है। सो शंकाकारकी दृष्टिसे यह अलक्ष्य बन गया रूप रस आदिक सहभावी गुण। तो उन सहभावी गुणोंमें गुण पर्यायत्व नहीं पाया जाता, फिर अतिव्याप्ति दोष कैसे लगेगा? पर्यायका लक्षण कहा है तद्भाव। मायने पदार्थका कुछ होना, "तद्भावः परिणामः" ऐसा सूत्रकारका भी वचन है। विशिष्ट रूपसे होनेका नाम परिणाम है और वह सहभावी एवं क्रमभावी समस्त पर्यायोंमें तद्भाव लक्षण पाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। अतः पर्यायका लक्षण भी अव्याप्ति दोषसे दूषित नहीं है। यहाँ कोई कहे कि फिर अतिव्याप्ति दोष लग जायगा, सो भी नहीं लगता, जहाँ तद्भाव नहीं है ऐसे द्रव्यमें पर्यायका लक्षण नहीं जाता। इस प्रकार यह प्रमाणसे सिद्ध हुआ कि द्रव्य और पर्यायमें लक्षण भेद भिन्न-भिन्न है और वह कथञ्चित नानापनको सिद्ध करता है।

द्रव्य और पर्यायमें कथंचित् अन्यता व कथंचित् अनन्यताकी सिद्धि—यहाँ प्रकरण चल रहा है इसका कि द्रव्य पर्यायमें कार्य कारणमें अन्यता है या एकता है। सिद्ध किए जा रहे उस द्रव्य पर्यायमें लक्षण आदिकके भेदसे भिन्नताहै और वस्तु एक है अतएव ए ता है। इसकी पुष्टिके लिए रूपादिकका उदाहरण भी उपयुक्त है। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब जो पाये जा रहे हैं मूर्त पदार्थोंमें सो यह बताये कोई कि रूप रस गंध आदिक परस्परमें अन्य-अन्य ही हैं या एक रूप हैं? वहाँ सिद्ध यही होगा कि कथञ्चित् अन्य-अन्य रूप हैं कथञ्चित् अनन्य हैं। तो रूपादिकके उदाहरण में भी साध्य और साधन पाये जाते हैं। तो कथञ्चित् नानापनसे व्याप्त जो भिन्न लक्षणपना है उसकी यहाँ सिद्धि की गई है, परस्पर व्यतिरिक्त स्वभाव संज्ञा, संख्या आदिकके द्वारा अर्थात् उनमें स्वभाव भिन्न है, संख्या भिन्न है, प्रयोजन भी भिन्न है अतएव द्रव्य और पर्याय कथञ्चित् नानारूप है, उनमें भिन्नता है, रूपादिकका लक्षण और रसादिकका लक्षण भी भिन्न भिन्न है अतएव वहाँपर भी कथञ्चित नानारूप विदित होता है। रूपादिकका लक्षण है रूपादिकके ज्ञानके प्रतिभासके योग्य होना अर्थात यह रूप है. इस तरहके प्रतिभासके जो विषय हो सकते हैं वह रूप है ऐसा रूप, रस आदिकमें सबमें अपनी-अपनी बुद्धिका भेद है, इस कारण कथंचित रूपादिक में नानापन सिद्ध होता है। तो द्रव्य और पर्यायमें लक्षण आदिकके भेदसे नानापन है, इसकी सिद्धिमें रूपादिकके उदाहरण भी सही हो जाते हैं।

द्रव्य व पर्यायमें भिन्नलक्षणत्व व एकवस्तुताकी मीमांसा—यहाँ शङ्काकार सांख्य कहता है कि क्या हर्ज है, रूपादिकमें, द्रव्यपर्यायमें भिन्न लक्षणपना भी बना रहे और नानापन भी बना रहे, परस्परमें भेद भी रहा आये और उनके लक्षण स्वभावादिक भी जुदे जुदे रहें, उसमें कोई विरोध नहीं आता। इस कारणसे जो हेतु दिया गया है वह संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक है अर्थात जिस हेतुकी विपक्षसे व्यावृत्ति रहे अर्थात जो हेतु विपक्षमें न जाय वह तो समीचीन होता है और जिसमें विपक्ष व्यावृत्ति न हो अर्थात विपक्षमें भी चला जाय वह हेतु सदोष होता है। इसी प्रकार विपक्षमें जानेका संदेह रहे वह भी हेतु सदोष होता है। यहाँ हेतुमें सन्देहवाला दोष है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का इस कारण युक्त नहीं है वि विरुद्ध धर्मका प्रतिभास और बुद्धिमें प्रतिभासभेदका होना इन दोनों बातोंसे वस्तुवे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वभावभेदकी सिद्धि हो जाती है। इन दोनोंके एक साथ रहनेमें विरोध नहीं है किंतु परस्पर साधकता है। पदार्थमें विरुद्धधर्म पाये जायें और बुद्धि में प्रतिभासभेद स्खलित न हो ये दोनों एक साथ सम्भव हो सकते हैं। इस कारण वस्तुमें स्वभावभेदकी सिद्धि होती है अन्यथा अर्थात विरुद्ध धर्मका अध्यास होना और बुद्धिप्रतिभास भेदका स्ख लत न होना इन दोनोंका अभाव होनेपर भी यदि वस्तुके स्वभावमें भेदकी सिद्धि करते हो तब यह जगत नानापनसे रहित हो जायगा और ऐसा मान लेनेपर फिर पक्षान्तर आ न सकेगा विरुद्ध धमका अध्यास और बुद्धि प्रतिभास भेदका स्खलित न होना इन दोको छोड़कर और कोई प्रकार नहीं है कि जो पक्ष उपस्थित किया जा सके। कैसे पक्षान्तर नहीं है ? सो सुनो ! विपक्षमें तो बाधक प्रमाणका सद्भाव है। विपक्ष हुआ यहाँ नानापनका अभाव याने सर्वथा एकत्व उसमें तो बाधक प्रमाण मौजुद है इस कारण विपक्षव्यावृत्ति निश्चित है और इसी सबब भिन्न लक्षणपना होना इस साधन का द्रव्य और पर्यायोंमें होना पाया जाता है और सर्वथा एकत्व होनेपर जो कि विपक्ष रूप है वहाँ विरुद्ध धर्मका अध्यास होना और बुद्धि में भेद प्रतिभास न होना ये दोनों नहीं पाये जाते हैं। यों भिन्न लक्षणताकी विपक्षमें अनुत्पत्ति है, विपक्षमें हेतु न जाय इस पद्धतिसे ही हेतु निर्दोष कहलाया करता है। उन विरुद्ध धर्मोंका अध्यास और बुद्धि प्रतिभासभेदका स्खलित न होना इन दोनोंके अभावमें भिन्न लक्षणताकी अनुत्पत्ति कैसे है ? सो भी सुनो ! व्यापक जो स्खलन बुद्धिप्रतिभास है और वही ग्राहक है उसका अभाव होनेपर व्याप्य भिन्न लक्षणत्व विषय नहीं बनता। अर्थात विरुद्ध धर्मका अध्यास होनेपर ही भिन्न लक्षणता बनती है। इसलिए विरुद्ध धर्मका अध्यास भिन्न लक्षणपनेका अविनाभावी है। इससे सिद्ध है कि जहाँ विरुद्धधर्मका अध्यास हो, बुद्धि में प्रतिभास भेद हो वहाँ वस्तु स्वभावमें भेद सिद्ध होता ही है। बुद्धि में प्रति-भासभेद स्खलित नहीं होता ग्राहक प्रतिभासके अभावमें और ग्राह्य पदार्थके अभावमें भी अगर भिन्न लक्षणपनेकी व्यवस्था मान ली जाय तब तो जगतमें कुछ भी एक न रहेगा। अब तो बिना कारणके ही कुछ भी व्यवस्था बनाई जाने लगेगी। और, न फिर जगतमें कुछ नाना भी रहेगा, क्योंकि विरुद्धधर्माध्यास और प्रतिभासभेदका स्खलित न होना, इसके अभावमें भी जब नानापना सिद्ध किया जाने लगा तब भिन्न लक्षणपना और नानापना ये अब उस विरुद्ध धर्माध्यासके द्वारा भिन्न लक्षणत्वका साधनपना न बन सकेगा और बिना साधनोंके किसीकी सिद्धि होती नहीं है। साधन के बिना यदि किसीकी सिद्धि मान ली जाय तो इसमें अतिप्रसङ्ग होता है और नाना-त्व एवं एकत्व माननेमें और कोई दूसरा प्रकार नहीं है। विरुद्ध धर्माध्यास और प्रति-भासभेदकी बुद्धि बनना इन दोके सिवाय अन्य कोई प्रकार नहीं है कि जिससे नाना-पन सिद्ध हो सके। इसी प्रकार विरुद्ध धर्माध्यासका न होना अथवा भेद प्रतिभासकी बुद्धिका न बनना यही होता है एकत्वके माननेका साधन। सो विरुद्ध धर्माध्यास और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनके उल्टा दोनोंके द्वारा ही नानात्व और एकत्व स्वरूपकी व्यवस्था बनती है। ऐसे ही बुद्धिप्रतिभास भेदका स्खलित न होना अथवा स्खलित होनेमें ही नानात्व और एकत्व स्वरूपकी व्यवस्था बनती है।

द्रव्यत्व पर्यायमें नानात्व व एकत्वके सम्बन्धमें सप्तपदी प्रक्रिया— उक्त प्रकारसे सिद्ध होता कि स्वलक्षणभेदसे द्रव्यपर्यामें नानापन है और अशक्य विवेचन होनेसे दोनोंमें एकत्व है और जब क्रमसे इन दोनोंकी विवक्षा की जाती है अर्थात् स्वलक्षणभेद और अशक्य विवेचन दोनोंकी विवक्षा करनेपर वस्तु स्यात् उभयरूप है और जब दोनों ही एक साथ विवक्षित किए जाते हैं तो कुछ कहा नहीं जा सकता है, इस कारणसे वस्तु अवक्तव्य ही हैं। जब विरुद्ध धर्माध्यक्षकी दृष्टि और एक साथ दोनोंकी दृष्टि की जाती हो तब वस्तु स्यात् नाना और अवक्तव्य है। इसी प्रकार जब अशक्य विवेचनता और दोनों पदार्थोंके एक साथ कहनेकी अशक्यता इन दो दृष्टियोंसे देखा जाता है तब वस्तु स्यात एक अवक्तव्य है। जब क्रमसे दोनों और अक्रमसे दोनों की विवक्षा की जाती है तब वस्तु कथंचित उभय अवक्तव्य है, इस तरह प्रत्यक्ष और अनुमानके अविरुद्ध सप्तभङ्गी प्रक्रिया जाननी चाहिए। यों कार्य कारणमें, गुण गुणीमें, अवयव अवयवीमें कथंचित भेद है और कथंचित एकत्व है। यह विषय इस परिच्छेदमें पुष्ट किया गया है।

अगले परिच्छेदमें वक्तव्यकी संधि—अब इन अंतिम दो कारिकाओंमें पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, ऐसा बताकर अब यह बतायेंगे कि उनके विषयमें कोई लोग यह मानते हैं कि उन दोनोंकी सिद्धि आक्षेपक है, ऐसा एकान्त किया जाता है। तो कुछ दार्शनिक ऐसा एकान्त करते हैं कि उनकी सिद्धि अनापेक्षिकी है। इन दोनों एकान्तोंका निराकरण करनेके लिए अब पञ्चम परिच्छेदमें कथन किया जायगा और वहां यह समर्थन होगा कि धर्म धर्मी आदिक व्यपदेश तो आपेक्षिक है किंतु उनका स्वरूप आपेक्षिक नहीं है। यह सब वस्तु स्वरूपका परिज्ञान किस तरह मोहके विनाश में सहायक होता है? यह पद्धति भी जानना चाहिए। समस्त ज्ञानोंका प्रयोजन निर्मोहता और वीतरागताका सम्पादन करना है। द्रव्य पर्यायकी बात स्वयंकी वस्तुमें घटाई जाय—यह मैं आत्मा स्वयं एक हूं और इसमें प्रतिक्षण उनकी परिणतियाँ होती रहती हैं। वे परिणतियाँ इस शाश्वत द्रव्यसे भिन्न लक्षण रखती हैं अतएव भिन्न हैं, नाना हैं किन्तु हैं वे अपनी ही परिणतियाँ। जिस कालमें वे परिणतियाँ हैं, उस कालमें इस द्रव्यसे अभिन्न हैं, अतएव एक वस्तु हैं। तो सम्यग्ज्ञानके इस अवयव के परिच्छेदमें अवयव अवयवी आदिके एकत्व व नानात्वकी मीमांसा की गई है।

यद्यापेक्षिकसिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥ ७३ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी मानने वाले दार्शनिकका आशय—धर्म धर्मीकी सिद्धि यदि आपेक्षिक मानी जाय तो इसमें परमार्थतः दोनोंकी व्यवस्था नहीं रहती, इसी प्रकार धर्म धर्मीकी सिद्धि यदि आपेक्षिकी मानी जाती है तो वहाँ सामान्य विशेषपना नहीं रहता है, इस रहस्यको सुनकर यहाँ कोई दार्शनिक यह कर रहा है कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि तो आपेक्षकी ही होती है, क्योंकि प्रत्यक्ष बुद्धिमें धर्म धर्मी का प्रतिभास नहीं होता। जैसे कि दूरवर्ती और निकटवर्ती पदार्थोंके सम्बन्धमें जो स्पष्ट अस्पष्टरूपका बोध होता है वह आपेक्षिक सिद्ध है, उसका भी निराकार दर्शनमें प्रतिभास नहीं होता है। प्रत्यक्षज्ञानमें, निराकार दर्शनमें धर्म और धर्मी प्रतिभासमान नहीं होते। धर्म धर्मीका प्रतिभास तो निराकार दर्शनके पश्चात् होने वाले विकल्पसे कल्पित किया जाता है। निराकार दर्शनमें अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानमें तो स्वलक्षणका ही प्रतिभास है। फिर कैसे धर्म धर्मीका व्यपदेश प्रत्यक्षके पश्चात् होने वाले विकल्पमात्र से ही उपकल्पित है, वह भी आपेक्षिकी सिद्धिका समर्थक है। देखिये ! जब यह अनुमान प्रयोग होता है कि सर्व क्षणिक है सत्त्व होनेसे तो यहाँ शब्दकी अपेक्षासे सत्त्वादिकको धर्म कहा गया है। याने वस्तुमें सत्यधर्म है और ज्ञेयत्वकी अपेक्षासे धर्मीका भी व्यवहार किया जाता है। सत्त्व भी तो ज्ञेय होता है। जो जाना जाय वह एक स्वतंत्र चीज है। तो यों धर्मी हो गया। अर्थात् वही सत्त्व धर्म, विशेष बनता है और वही सत्त्व धर्मी विशेष्य बन जाता है। तो यहाँ ज्ञेयत्वकी अपेक्षासे ज्ञेयत्व धर्म हैं और क्या कहा गया उस सत्त्व शब्दके द्वारा उस अभिधेयपनेकी अपेक्षासे सत्त्वादिक धर्मी कहलाता है और जब अभिधेयपनेकी अपेक्षा की जाती है तो अविधेयपना धर्म कहलाता है और जब प्रमेयपनेकी अपेक्षा की जाती है कि प्रमेय क्या हुआ, जाना क्या गया? तब वही सत्त्व धर्मी कहलाता है। तब देखिये ! कि किसी भी शब्दमें जो धर्म धर्मीकी व्यवस्था की जाती है वह अपेक्षासे की जाती है। इस प्रकार धर्म और धर्मी कहीं भी व्यवस्थितरूपसे नहीं ठहरता है इस कारण धर्म अथवा धर्मी तात्त्विक चीज नहीं है, किन्तु उनकी सिद्धि अपेक्षिक है और वह कल्पित है।

उदाहरण द्वारा धर्म धर्मीकी आपेक्षिकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा उपसंहार—देखिये ! नीलका स्वलक्षण अथवा ज्ञानका स्वलक्षण प्रत्यक्षमें प्रतिभासमान होता हुआ किसीकी अपेक्षा रखकर अन्य प्रकारसे वह होते हुए अनुभवमें आये, ऐसा नहीं पाया जाता। स्वलक्षण तो जहाँ जो है सो ही है। वहाँ परिवर्तन नहीं होता। जैसे कि धर्म और धर्मीके सम्बन्धमें परिवर्तन हो जाता है वही किसी अपेक्षासे धर्म है तो किसी अपेक्षासे धर्मी है। जैसे कि अभी सत्त्वके सम्बन्धमें बताया गया लेकिन वस्तुका जो असाधारण स्वरूप है वह किसी भी अपेक्षासे बदल नहीं सकता है। तो जो स्वलक्षण है वह प्रत्यक्षसे प्रतिभासित है और अनापेक्षिक है। केवल अपेक्षा बुद्धिमें विशेषण विशेष्यपना सामान्य विशेष्यपना, गुण गुणीपना, क्रिया क्रियावान-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पना, कारण कार्यपना, साधन साध्यपना, ग्राहक ग्राह्यपना यह सभी अपेक्षाओंसे हीं प्रकल्पित होता है। जैसे कि दूर और निकट कौन सा स्थान दूर कहलायगा और कौन सा स्थान निकट कहलायगा ? इसको कोई निर्णय नहीं दे सकता, क्योंकि दूर और निकट आपेक्षिक है। जिस स्थानको किसी अपेक्षासे हम दूर कहते हैं वही स्थान किसी अन्य अपेक्षासे निकट हो जाता है। तो जैसे दूर होना निकट होना यह कोई स्वतः सिद्ध बात नहीं है, आपेक्षिक है इसी प्रकार धर्म धर्मी विशेषण विशेष्य आदिक भी अपेक्षासे सिद्ध होता है। ऐसा कोई दार्शनिक धर्म धर्मी आदिकी सिद्धि आपेक्षिकी करनेके लिए यह सब कह रहे हैं।

आपेक्षिक सिद्धिका एकान्त करने पर और उसे अतात्त्विक कहनेपर शंकाकाराभिमत नील व नीलसंवेदनके अभावका प्रसग—अब उक्त मंतव्यके निराकरणके लिए आचार्यदेव कहते हैं कि यदि धर्म धर्मी आदिककी एकान्ततः आपेक्षिकी सिद्धि मानी जाय तब ये दोनों कुछ नहीं ठहर सकते, नील स्वलक्षण और नील का सम्वेदन ये दोनों आपेक्षिक हैं। अर्थात् एककी अपेक्षासे दूसरेकी सत्ता ठहरती है अथवा जानकारी होती है वह इस प्रकारकी जिसकी सर्वथा परस्पर अपेक्षाकृत ही सिद्धि है उसकी व्यवस्था नहीं बनती। जैसे कि एक नदीमें तैरने वाले दो लोग परस्पर एक दूसरेका आश्रय करलें तो दोनोंकी सही व्यवस्था न रहेगी। कोई दो तैराक लोग आपसमें एक दूसरेको पकड़लें तो दोनोंको डूबनेकी सम्भावना है और वे भली भाँति तैरकर नहीं निकल सकते। जिस तरह परस्पर आश्रय करनेसे दो तैराक विडम्बनामें पड़ जाते हैं इसी प्रकार इन धर्म धर्मी नील पदार्थ, नील सम्वेदन आदिक सब कोई आपेक्षिक मान लिये जानेपर दोनोंकी ही व्यवस्था नहीं बनती है। नील और नीलका सम्वेदन इनकी भी सर्वथा अपेक्षाकृत सिद्धि है इस कारण ये दोनों नहीं ठहर सकते। नीलपदार्थ नीलज्ञानकी अपेक्षा न रखकर सिद्ध नहीं हो सकता। यदि नील सम्वेदनकी अपेक्षा न रखे तो वह नील अवेद्य बन जाय अर्थात् ज्ञेय न रहेगा उसकी कुछ जानकारी ही न बन सकेगी। क्योंकि वस्तुकी व्यवस्था ज्ञान निष्ठ हुआ करती है व्यवस्थापक तो ज्ञान है। ज्ञानमें वस्तु आये तो उसकी व्यवस्था बनती है। तो जैसे नील पदार्थ सम्वदनकी अपेक्षा न रखकर सिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार नील पदार्थकी अपेक्षा न रखे तो नील सम्वेदन भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि नील सम्वेदनका आत्म लाभ तो नील पदार्थसे माना गया है अन्यथा नील सम्वेदन निर्विषय बन जायगा। यह नील है इस प्रकारका जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान नील पदाथ है तब बनता है नील पदार्थका विषय किया है। तब बनता है। तो यहां नील पदार्थ और नील सम्वेदन ये दोनों ही परस्पर आश्रित हो गए। इनमेंसे यदि किसी एकका ही अभाव कर दिया जाय तो शेष दूसरेका भी अभाव हो जायगा। तब दोनोंकी व्यवस्था न बन सकेगी। जब किसी एकको मुख्य किया जाता है और दूसरेको आपेक्षिक सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानकर गौण कर दिया जाता है तो उनमें जिसको गौण किया उसका ही अभाव बन बैठेगा तब तो मुख्यकी भी सिद्धि न हो सकेगी। किसी भी एक की सिद्धि न हो शेष दूसरेकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। तो नील और नील सम्वेदन ये एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं, न रखें तो दोनोंकी व्यवस्था न बने।

नीलवासनासे नीलसंवेदनकी उपपत्ति माननेपर भी शंकाकारका दोषापत्तिसे छुटकारेका अभाव—नील वासनासे नील सम्वेदन होता है, ऐसा यदि शङ्काकार कहे तो इस दर्शनमें भी उन दोनोंकी व्यवस्था न बन सकेगी। क्योंकि नीलवासना कैसे बनी ? इसका उत्तर दिया जायगा कि नील सम्वेदन कर रहे तब वासना बनी तो जब पूछा जाय कि नील सम्वेदन कैसे बना तो उसके लिए इसी पंक्ति में कहा ही जा रहा है कि नील वासनासे नील सम्वेदन बना तो इस तरह नील वासना से नील सम्वेदन माननेपर दोनोंका ही सत्त्व सिद्ध न हो सकेगा। उन दोनोंके अन्योन्यापेक्ष एकान्त मान लेनेपर याने प्रकट अपेक्षाकृत सिद्ध है लेकिन सर्वथा ही अपेक्षा सिद्ध मान लिया जाय, उनका सत्त्व स्वतंत्र स्वीकार न किया जाय तो स्वभावसे प्रतिष्ठित किसी एकका भी अभाव होनेपर याने जब एकका अभाव हुआ तो शेष बचे हुएका भी अभाव हो गया, तब ये दोनों ही कल्पनामें नहीं ठहरेंगे। नील पदार्थके ज्ञान के अभावमें तद्विषयक वासना विशेष व्यवस्थित नहीं होता है अन्यथा अर्थात् नील पदार्थके ज्ञानके अभाव होनेपर भी यदि नील विषयक वासना विशेष मान लिया जाता है तो फिर अनेक अति प्रसंग आते हैं। धूमरूप दर्शनके अभावमें भी पर्वतमें अग्निका सद्भाव मान लिया जाय आदिक अनेक प्रसंग होनेसे यह नहीं कहा जा सकता है कि नील पदार्थ विषयक ज्ञानके अभावमें नीलज्ञान विषयक वासना विशेष बन जायगी। इसी प्रकार नील पदार्थका सम्वेदन भी व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है। अन्यथा अर्थात् नील वासनाके बिना नील ज्ञानकी व्यवस्था मानी जाती है तो वह निमित्त सहित बन जायगी। क्योंकि अब नील ज्ञानको नील वासनाकी भी आवश्यकता नहीं हुई। शङ्काकार यह कहता है कि सम्वेदनका तो स्वतः ही प्रकाशन है याने नील ज्ञान स्वयं ही बन जाता है, इस कारण दोष न आयगा। इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी युक्ति निकाली नहीं जा सकती, क्योंकि इसमें परस्पर अपेक्षाके एकान्तका विरोध है। यहाँ पक्ष तो यह चल रहा है कि सभीकी सिद्धि आपेक्षिकी है। अब नील वेदनका मान लिया स्वतः ही प्रकाशन तो मूल पक्ष तो अब न रहा और, भी देखिये ! यों दण्डादिक विशेषण भी विशेषण बुद्धिमें स्वतः हो जायें और सामान्य क्रिया गुण आदिक भी अपनी बुद्धिमें अन्यकी अपेक्षा रहित प्रतिभासित हो जायें और इसी प्रकार विशेष्य विशेषण आदिक भाव भी अपनी बुद्धिमें स्वतः ही रूपसे प्रसिद्ध हो जायें। तब प्रतिवादियोंके द्वारा कहा गया यह दोष कि दोनोंका अभाव हो जायगा यह दोष अब न आ सकेगा। तो जब विशेषण विशेष्य सामान्य विशेष आदिक दोनों रूपोंका अभाव न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो सका तो इसी प्रकार दूर निकट आदिक दृष्टान्त जो शङ्काकारने दिया है वह साध्य और साधन दोनों धर्मोंसे रहित हो जायगा।

मूल प्रसंगमें साध्य साधनका अभाव—शङ्काकारका मूल पक्ष यह था कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी होती है, क्योंकि निराकार दर्शनमें धर्म और धर्मी का प्रतिभास नहीं है। जैसे कि दूर और निकट आदिक व्यवहारोंका प्रतिभास निराकार दर्शनमें नहीं है, किन्तु उसके बाद होने वाले विकल्पज्ञानमें प्रतिभास है तो इस मूल प्रसंगमें जो दूर और निकटका दृष्टान्त बताया अब इसमें न साध्य रहा और न साधन रहा। न आपेक्षिकी सिद्धि रही और न प्रत्यक्ष बुद्धिमें अप्रतिभास रहा। दूर और निकट भाव भी तो अपने स्वभाव परिणमन विशेष हैं। यदि उस रूपसे स्वभाव परिणमन न माना जाय तो समानदेशमें रहने वाले पदार्थोंमें भी दूर और निकटवर्ती के व्यवहारका प्रसंग आ जायगा। अर्थात जो एक ही जगह हैं दोनों उनमें भी दूर निकट रहते हैं यों मान लेना पड़ेगा क्योंकि दूर और निकटवर्ती होनेका कोई उस रूप से स्वभाव परिणमन माना ही नहीं है. परन्तु ऐसा कहाँ है ? समान देश, समानकाल और समान स्वभाव वाले उस एक दूसरेकी अपेक्षासे भी दूर और निकट भावका व्यवहार नहीं होता है। जैसे कि खरविषाणमें दूर और निकट रहनेका स्वभाव नहीं है तो वहाँ दूर और निकटका व्यवहार नहीं बनता। इसी प्रकार समान देशकाल स्वभाव वाले पदार्थोंमें भी अन्यान्यापेक्षासे भी दूर आसन्नका व्यवहार नहीं बन सकता। क्योंकि यहाँ भी अब स्वभाव परिणमन नहीं माना गया। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि दूर और आसन्न व्यवहार भाव स्वभावसे होता है अन्यथा यहाँ इतरेतराश्रय दोष हो जायगा। जब दूर और निकटके पदार्थोंका ज्ञान हो जाय तब दूर और निकटके पदार्थके प्रतिभासकी समझ बनेगी और जब दूर और निकट अर्थके प्रतिभासकी समझ बन जाय तब दूर और निकटके पदार्थोंका ज्ञान बनेगा। अतः मानना चाहिए कि इन सबकी सिद्धि सर्वथा आपेक्षिकी नहीं है।

धर्म धर्मीकी सिद्धिकी भी धर्म धर्मी स्वभाव विशेषकी सिद्धिपर निर्भरता—दूर आसन्न विशेष्य विशेषण आदिक सभी पदार्थोंकी जब स्वभावसे स्थिति बतायी गयी है तो इसमें यह भी समझ लेना चाहिए कि अपने अर्थात् सत्त्वके आश्रयभूत शब्द वहाँ जैसे शब्द क्षणिक है सत्त्व होनेसे, इस अनुमान प्रयोगमें शब्दादिककी अपेक्षासे सत्त्वादिकका धर्म रूपसे और अपने धर्मकी अपेक्षासे धर्मत्व रूपसे माननेकी बात अव्यवस्थाकारी होनेसे अयुक्त नहीं है यह बात सिद्ध हो जाती है। परमार्थसे धर्म और धर्मी स्वभाव यदि न माना जाय तो परकी अपेक्षासे भी धर्म धर्मी भाव नहीं बन सकता है। शंकाकारका जो यह पक्ष है कि धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी है तो धर्म धर्मी आपेक्षिक है। तो धर्म धर्मी आपेक्षिक है यह बात भी तब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनेगी जब कि वहाँ धर्म धर्मी होनेका स्वभाव विशेष पड़ा हो। अन्यथा तो अटपट अपेक्षासे कुछका कुछ सिद्ध बना दिया जायगा, पृथकभूत घटपट पदार्थोंमें भी धर्म धर्मी की आपेक्षिकी सिद्धि कह दी जाय। आखिर आपेक्षिकी सिद्धि भी तो कहाँ होगी, कहाँ न होगी यह भी तो देखना होगा और वह सब धर्म धर्मी होनेके स्वभाव विशेष की समझपर होगा तो धर्म धर्मी भाव नहीं बन सकता। और फिर दूसरी बात यह है कि धर्म तो अनन्त है और उसका अपेक्षावान है वह भी अपर्यन्त है अर्थात् अनन्त है। अन्यथा अर्थात् सभी धर्म धर्मीको स्वतः सिद्ध बनाया जाय तो जिसको धर्म धर्मी मान रहे हैं उनकी व्यवस्था नहीं हो सकती। आपत्ति आयगी, फिर तो भिन्न भिन्न किन्हीं भी पदार्थोंमें सर्म धर्मी मान लेनेकी व्यवस्था बना ली जायगी इस कारण आपेक्षकी ही है। ऐसा एकान्त संगत नहीं बनता है।

अनापेक्षिकी सिद्धिका एकान्त करने वाले दार्शनिकका आशय—अब शंकाकार नैयायिक कहता है कि धर्म और धर्मीकी तो सर्वथा अनापेक्षिकी सिद्ध है। जब आपेक्षिकी सिद्धिमें दोष आ रहा है तब अनापेक्षिकी सिद्धि मान लीजिए और अनुमान प्रयोगसे भी सिद्ध होता है कि धर्म धर्मी आदिक सर्व पदार्थोंकी सिद्धि अनापेक्षिकी होती है। इस विषयमें यह अनुमान प्रयोग है कि धर्म और धर्मीकी सर्वथा अनापेशकी सिद्धि है। क्योंकि प्रतिनियत बुद्धिका विषय होनेसे। यह धर्म है यह धर्मी है इस तरह जो प्रतिनियत ज्ञान चल रहा है उसके वे विषय बन रहे हैं याने धर्मके बारेमें ही यह बुद्धि चलती है कि यह धर्म है। धर्मीके प्रति ही यह ज्ञान बनता है कि यह धर्मी है। तो यों प्रतिनियत बुद्धिका विषयभूत होनेसे धर्म और धर्मीकी सिद्धि सर्वथा अनापेक्षिको है यह सिद्ध होता है। जैसे कि नीलादिक स्वरूप। नील और नील स्वरूपका अनापेक्षिक प्रसाधन माना है, अर्थात इसकी सिद्धि घटपट पदार्थोंमें भी धर्म धर्मीकी आपेक्षिकी सिद्धि कह दी जाय। आखिर आपेक्षिकी सिद्धि भी तो कहाँ होगी कहाँ न होगी यह भी तो देखना होगा और वह सब धर्म धर्मी होसेके स्वभाव विशेषकी समझपर होगा तो धर्म धर्मीका स्वभाव विशेष यदि नही पाया जा रहा तो परकी अपेक्षासे भी धर्म धर्मी भाव नहीं वन सकता। और, फिर दूसरी बात यह है कि धर्म तो अनन्त है और उसका जो अपेक्षावान है वह भी अपर्यन्त है अर्थात् अनन्त है अन्यथा अर्थात् सभी धर्म धर्मीको स्वतः सिद्ध न माना जाय तो जिनको धर्म धर्मी मान रहे हैं उनकी व्यवस्था नहीं हो सकती, आपत्ति आयगी। फिर तो भिन्न भिन्न किन्हीं भी पदार्थोंमें धर्म धर्मी मान लेनेकी व्यवस्था बना ली जायगी। इस कारण आपेक्षिकी सिद्धिका एकान्त समीचीन नहीं है, धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी ही है ऐसा एकान्त संगत नहीं बनता है। असापेक्षकी मानी है। इसी प्रकार धर्म धर्मी की भी सिद्धि अनापेक्षकी होती है। यदि सर्वथा अनापेक्षपना न माना जाय धर्म धर्मी आदिक पदार्थोंमें तो उनमें प्रतिनियत बुद्धिका विषयपना नहीं बन सकता है। यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्म है, यह धर्मी है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूपसे जो उनका प्रतिभास होता है वही यह सिद्ध कर रहा कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि अनापेक्षकी है। अनापेक्ष न माननेपर प्रतिनियत ज्ञान न बन सकेगा। जैसे आकाश पुष्प। वहाँ कोई अनापेक्षिक याने स्व-तंत्र सत्त्व नहीं है। तो वहाँ वह प्रतिनियत बुद्धिका विषय नहीं बनता अथवा आकाश पुष्पके सम्बन्धमें कोई प्रतिनियत ज्ञान नहीं बनता क्योंकि कुछ सत्त्व ही नहीं। तो वहाँ सर्वथा अनापेक्षिकी सिद्धि नहीं है जिसके बलपर वह सब बन सके।

अनापेक्षिकी सिद्धिके एकान्तका निराकरण—अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि धर्म धर्मी आदिक पदार्थोंकी सिद्धि जो अनापेक्षिक मानी है सो इस अनापेक्षाके पक्षमें भी अन्वय व्यतिरेक नहीं बन सकता है। जैसे कि आक्षेपकी सिद्धि माना। मंतव्यमें अन्वय व्यतिरेक नहीं बनता उसी प्रकार अनापेक्षकी सिद्धि मानना, मंतव्यमें अन्वय व्यतिरेक नहीं बनता, क्योंकि भेदाभेदका विशेष सामान्यका परस्पर अपेक्षात्मकपना है। विशेष सामान्यकी तरह। अन्वयके मायने है सामान्य और व्यतिरेकका अर्थ है विशेषण। ये दोनों परस्पर सापेक्षिक ही व्यवस्थित होते हैं। उनका अनापेक्षिक दोष माननेपर वहाँ सामान्य विशेषता नहीं रह सकती। अन्यथा प्रतिनियत बुद्धिके विषयभूत पदार्थोंमें प्रतिनियत पदार्थता आ जायगी नील पीत आदिककी तरह जैसे कि नील और पीतके अनापेक्षिक सिद्ध होनेपर यह नील है, यह पीत है, यह निश्चय नहीं बनता। मान लो केवल एक नील नील ही पदार्थ रहता, पीतादिक न होते तो उसे नील कौन कह सकता था? चूंकि पीत आदिक अन्य भेद नहीं हैं अतएव नील है, हम ऐसा ज्ञान करते हैं। कोई यहाँ आशङ्का करता है कि इस विशेषका यह सामान्य है, इस सामान्यका यह विशेष है, ऐसा प्रतिनियत अन्वय व्यतिरेक बुद्धिका विषय होनेसे उन सामान्य और विशेषमें भी सामान्य विशेष रूपता बन जायगी। इस आशङ्काके समाधानमें कहते हैं कि भाई अभेद भेद निरपेक्ष नहीं हुआ करता। भेद-निरपेक्ष अभेद प्रतिनियत अन्वय बुद्धिका विषयभूत नहीं है। इसी प्रकार अभेद निर-पेक्ष भेद भी कभी भी प्रतिनियत व्यतिरेक बुद्धिका विषय नहीं बनता। अभेद शब्दकी सिद्धि भावका अर्थ जानने वाला ही कर सकता है। तो भेद निरपेक्ष अभेदसे अन्वय बुद्धि नहीं बनती और अभेद निरपेक्ष भेदसे व्यतिरेक बुद्धि नहीं बनती किसी भी विशेषमें विशेषपना तभी समझा जाता है जब कि कुछ सामान्यपना भी जाना गया हो। इसी प्रकार किसी भी सामान्यमें सामान्यपना तब जाना जाता है जब कुछ विशेष भी समझा गया हो, अन्यथा एक व्यक्तिमें भी और उसके पहिले देखनेके सम्बन्धमें अन्वय और व्यतिरेक बुद्धि हो जाना चाहिए, पर ऐसा कहाँ है? तब अन्वय व्यतिरेक बुद्धिका विषय आपेक्षिक सिद्ध होनेसे जो हेतु दिया है शंकाकारने कि ये सब पदार्थ अनापेक्षक हैं, इसकी सिद्धि अनापेक्षकी है, प्रतिनियत बुद्धिका विषय होनेसे। सो यह हेतु विरुद्ध बन जाता है अर्थात् प्रतिनियत बुद्धिका विषय होनेसे। शंकाकार तो यह

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध करना चाहता था कि इन पदार्थोंकी सिद्धि अनापेक्षकी है। अतः यह हेतु विरुद्ध दोषसे दूषित है। जो प्रतिनियत बाधक विषयभूत हो वह कथञ्चित् आपेक्षिकपनेसे व्याप्त है। प्रत्यक्ष बुद्धिका प्रतिभासमान होने वाले दूर निकट पदार्थोंकी तरह। जैसे दूर और निकटमें जो प्रत्यक्ष बुद्धिमें प्रतिभासमान होता है वह कथंचित् आपेक्षकपनेसे व्याप्त है इस कारणसे आपेक्षक और अनापेक्षकके दोनों एकान्त घटित नहीं होते। जिन दार्शनिकोंका यह मंतव्य है कि धर्म और धर्मीकी व्यवस्था आपेक्षकी है यह मतव्य भी दूषित है और जिन दार्शनिकोंका यह भाव है कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि अनापेक्षकी है ये दोनों मंतव्य भी दूषित हैं। ये दोनों एकान्त घटित नहीं होते। अन्यथा इस एकान्तके माननेपर वस्तुकी व्यवस्था न बन सकेगी।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७४॥

आपेक्षिकी अनापेक्षिकी सिद्धिके उभयैकान्तका निराकरण—जब अपेक्षाका एकान्त और अनापेक्षाका एकान्त सिद्ध न हो सका तो यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि तब वहाँ उभय एकान्त मान लीजिए अर्थात अपेक्ष एकान्त भी है और अनापेक्ष एकान्त भी है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि जो दार्शनिक स्याद्वाद न्यायसे विद्वेष रखते हैं अर्थात् स्याद्वाद नीतिका अनुशरण नहीं करते हैं उनके यहाँ इन दोनों एकान्तोंका विरोध है इस कारण उभय एकान्त भी सिद्ध नहीं होता। हाँ स्याद्वाद नीतिका अनुशरण यदि कर लिया जाय, वहाँ दृष्टि अपेक्षा समझ ली जाय तो आपेक्षिकपना और अनापेक्षिकपना दोनों सिद्ध हो जाते हैं। सो इस नीतिके अनुशरणमें उसको एकान्त न कहा जा सकेगा। तो जो स्याद्वाद नीतिका आश्रय नहीं करते हैं उनके यहाँ उभय एकान्त सिद्ध नहीं होते। कोई लोग कहते हैं कि सर्व कुछ सत् ही है असत् कुछ होता ही नहीं है। अर्थात् असत्में कार्य नहीं बनता। जो जो भी कार्य होते हैं वे सब पहिलेसे सत् हैं। तो कोई यह कहते हैं कि दुनियामें कोई भी पदार्थ पहिलेसे सत् नहीं होता। जो भी पदार्थ उत्पन्न होता है वह असत् ही उत्पन्न होता है। तो जैसे इन दोनों एकान्तोंमें विरोध है अतः ये सिद्ध नहीं होते। इसी प्रकार अपेक्षा एकान्त और अनापेक्षा एकान्तमें विरोध है। अतः ये भी सिद्ध नहीं होते।

आपेक्षिकी व अनापेक्षिकी सिद्धिके सम्बन्धमें अवाच्यतैकान्तका निराकरण—अब चौथा शंकाकार यह कहता है कि जब अपेक्षा एकान्त न बना और अनपेक्षाकान्त न बना तथा उभय एकान्त भी न बना तब अवाच्यताका एकान्त मान लिया जाय अर्थात् इस प्रसंगमें वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है। इस शंकाके समाधान में कहते हैं कि इस तरह अवाच्यताका एकान्त भी नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि उसमें स्ववचन विरोध है। अवक्तव्यताके एकान्तका निराकरण पहिले अनेक बार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर लिया जा चुका है इस कारण यहाँ विशेषसे अब क्या प्रयोजन है ? समझ लेना चाहिए कि जैसे सत्त्व और असत्त्व रूपसे अवाच्यताका एकान्त पहिले निराकृत किया गया है विस्तारसे, उसी पद्धतिमें यहाँ भी समझ लेना चाहिए कि अपेक्षैकान्त ये सर्वथा अवक्तव्य हैं । ऐसा अवक्तव्यताका एकान्त नहीं कहा जा सकता। आखिर यहाँ भी इतना तो मानना ही होगा कि यह अवक्तव्य है इस रूपसे वक्तव्य तो है। यों ये चारों प्रकारके एकान्त युक्तिसे संगत नहीं हैं। इस परिच्छेदमें उक्त प्रकारसे कथञ्चित आपेक्षिकपना और कथञ्चित अनापेक्षिकपनाका अनेकान्त इस सामर्थ्यसे ही सिद्ध है कि जब आपेक्षिक एकान्तका निराकरण कर दिया और अनापेक्षिक एकान्तका निराकरण कर दिया इस निराकरणसे ही यह सिद्ध होता है कि इस सम्बन्धमें अनेकान्त है। स्याद्वाद विधिसे ही निर्णय है, ऐसा सिद्ध होनेपर भी किन्हीं पुरुषोंको यदि कुछ आशंका है, उनमें उनको हठ है तो उनका निराकरण करनेके लिए पुनः समन्तभद्राचार्य कहते हैं ।

धर्मधर्म्यविनाभावः सिध्यत्यन्योन्यवीक्षया ।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥७५॥

स्वरूपकी दृष्टिसे अनापेक्षिकी सिद्धि व व्यवहारकी दृष्टिसे आपेक्षिकी सिद्धि—धर्म और धर्मीका अविनाभावी एक दूसरेकी अपेक्षासे सिद्ध होता है परन्तु स्वरूप अपेक्षासे सिद्ध नहीं होता। वह तो स्वतः ही है। जैसे कारकके अंग और ज्ञापकके अंग इनमें कारकपनेकी बात तो स्वतन्त्रतासे है और ज्ञापकके सम्बन्धकी बात परस्पर अपेक्षासे है और ज्ञापकके सम्बन्धकी बात परस्पर अपेक्षासे है। धर्म और धर्मीका अविनाभाव है और वह परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षासे ही सिद्ध होता है परन्तु स्वरूप एक दूसरेकी अपेक्षासे सिद्ध नहीं किया जाता क्योंकि स्वरूप तो पहिले से ही सिद्ध होता है। स्वतः सिद्ध वस्तुमें धर्म धर्मीका निर्णय किया जाता है। धर्म और धर्मीका स्वरूप स्वतः ही सिद्ध है सामान्य विशेषकी तरह : जैसे सामान्य स्वतः सिद्ध स्वरूप है पर जाना जाता है भेदकी अपेक्षा रखकर अन्वय बुद्धिसे इस प्रकार विशेष भी स्वतः सिद्ध स्वरूप है, किन्तु वह जाना जाता है सामान्यकी अपेक्षा रखने वाले व्यतिरेकके ज्ञानसे अर्थात् विशेषका परिज्ञान होता है व्यतिरेकसे । यह इससे जुदा है इस तरहकी समझसे विशेषका परिचय होता है। लेकिन यह व्यतिरेक सामान्यकी अपेक्षा रखता हुआ ही रहता है। इसी प्रकार सामान्य जाना तो जाता है अन्वय बुद्धिसे परन्तु यह अन्वय व्यतिरेककी अपेक्षा रखकर ही रह पाता है। केवल सामान्य विशेषका ही स्वलक्षण अपेक्षित हो, परस्पर अविनाभाव रूप हो सो ही नहीं है किन्तु धर्म और धर्मीका स्वलक्षण अपेक्षित हो, परस्पर अविनाभाव रूप हो सो ही नहीं है किन्तु धर्म और धर्मीका स्वलक्षण भी स्वतः सिद्ध है। गुण गुणी आदिकका भी स्वरूप स्वतः सिद्ध है। उन सबका अपना निज निज स्वरूप है। कर्ता कर्म बोध्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोधककी तरह। जैसे कारकके अंग हैं कर्ता और कर्म तो ये कर्ता और कर्म स्वरूपत: तो स्वत: सिद्ध हैं और ज्ञापकके अंग हैं बोध्य बोधक भाव। तो कर्ताका स्वरूप कर्मकी अपेक्षा रखकर नहीं है। कर्मका स्वरूप कर्ताकी अपेक्षा रखकर नहीं है। जैसे एक वाक्य बोला कि राम पुस्तक पढ़ रहा है तो कर्ता यहाँ राम है और कर्म है पुस्तक। तो रामका अस्तित्व पुस्तककी अपेक्षा नहीं है। पुस्तकका अस्तित्व रामकी अपेक्षासे नहीं है। यदि कर्ता और कर्म एक दूसरेकी अपेक्षासे बन जाय तो दोनोंका सत्त्व न रहेगा, पर कर्तृत्वका व्यवहार परस्पर अनपेक्ष नहीं है। इस वाक्यमें राम कर्ता है, यह जब जाना गया कि पुस्तक कार्य है और क्रिया भी समझी गई पुस्तक कर्म है यह जाना गया कि इस पुस्तकका जो कुछ करना है उसका करने वाला राम है। तो रामका व्यवहार और कर्मका व्यवहार तो परस्परकी अपेक्षासे है मगर कर्ताका स्वरूप और कर्मका स्वरूप परस्परकी अपेक्षासे नहीं है। कर्तृत्वपनका निश्चय तब ही होता है जब कर्मका निश्चय होता है। कर्मपनेका निश्चय तब होता है जब कर्ताका ज्ञान होता है। इस प्रकरणसे बोध्य बोधकका प्रमेय प्रमाणका स्वरूप स्वत: सिद्ध है परन्तु ज्ञाप्य ज्ञापकका व्यवहार परस्परकी अपेक्षासे सिद्ध है यह कहा गया उसी प्रकार समस्त धर्मी और धर्ममें यही प्रक्रिया लगाना चाहिए।

आपेक्षिकी सिद्धि व अनापेक्षिकी सिद्धिके सम्बन्धमें सप्तभङ्गी प्रक्रिया उदाहरणके रूपमें यहाँ कुछ बातें बतायी गई हैं लेकिन इसी पद्धतिसे जगतमें जितने धर्मभूत पदार्थ हैं और धर्मीभूत पदार्थ हैं सबमें यही स्याद्वाद नीतिसे आपेक्षिक और अनापेक्षिकताका परिचय कर लेना चाहिए। सभी पदार्थ व्यवहार दृष्टिसे तो आपेक्षिक हैं परन्तु पूर्व प्रसिद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे अनापेक्षिक हैं। सभी पदार्थ अपनी सत्ता स्वयमेव रखते हैं। अब उनमें यह व्ययहार होना कि यह कर्ता है, यह कर्म है, यह धर्म है, यह धर्मी है, यह सब व्यवहारसे जाना जाता है। तो व्यवहार दृष्टिसे आपेक्ष की सिद्धि है। पूर्व प्रसिद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे अनापेक्षकी सिद्धि है। जब क्रमसे दोनोंकी विवक्षा लगायी जाय तो सिद्धि आपेक्षकी और अनापेक्षकी है। जब दोनों दृष्टियोंसे एक साथ कहने चले तो नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिसे स्यात् अवक्तव्य है अर्थात् दोनों दृष्टियोंकी एक साथ विवक्षा करनेपर अवक्तव्यपना है। तब व्यवहार दृष्टि और एक साथ सहार्पित दृष्टि की जाय तो आपेक्षकी अवक्तव्यता दृष्ट है। इसी प्रकार जब पूर्व प्रसिद्ध स्वरूपकी दृष्टि और सह विवक्षाकी दृष्टि हो तो पदार्थ अनापेक्षकी और अवक्तव्य सिद्धि वाला है। जब क्रमसे दोनों ही दृष्ट हुए और युगपत दोनों दृष्ट हुए तब वे सिद्ध आपेक्षकी अनापेक्षकी और अवक्तव्य होते हैं। इस तरह सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया समस्त पदार्थोंकी सिद्धिके सम्बन्धमें नय विवेककी विवक्षासे अविरुद्ध रूपसे समझना चाहिए। इस तरह इस प्रकरणमें यह बताया गया है कि पूर्व प्रमाणमें जो वस्तु स्वरूपकी सिद्धि की है वह सब सिद्धि व्यवहारके प्रसंगमें तो आपेक्षकी है, परन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निज निज स्वरूपकी सिद्धिके प्रसंगमें अनापेक्षकी है। इस प्रकरणसे शिक्षा यह मिलती है कि सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूपसे स्वतः सिद्ध हैं। कोई पदार्थ अपनी सत्ता कायम रखानेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता है। भले ही उनका व्यवहार जो अनेक प्रकारसे होता है उसमें अपेक्षा है। तो सत्त्वको स्वतंत्र जानकर एक दूसरेसे किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं, अपेक्षा नहीं, ऐसा समझकर निर्मोहताके लिए प्रेरणा मिलती है और सम्यग्ज्ञानका यही प्रयोजन है कि मोह और अज्ञानका समूल विध्वंस हो जाय।

सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः।
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥ ७६ ॥

उपाय तत्त्वकी व्यवस्थाका प्रतिपादन—अब इस परिच्छेदमें उपाय तत्त्व की व्यवस्था की गई है। अब तक उपेय तत्त्वके सम्बंधमें बहुत वर्णन किया गया उपेय तत्त्वका अर्थ है जो पाने योग्य तत्त्व है, समझने योग्य तत्त्व है उसका बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ। आत्मा, सर्वज्ञ लोक, परलोक, वस्तु स्वरूप जो जो कुछ भी करने योग्य, समझने योग्य, चिन्तनके योग्य तत्त्व है उसका वर्णन किया गया था। अब उपाय तत्त्वकी व्यवस्था की जा रही है कि वह उपाय तत्त्व पाया किस तरह जाता है ? जैसे जिसने पहिले उपेय धान्यकी व्यवस्था की है, समझा है कि यह धान्य अनाज बोने योग्य चीज है तब वह खेती आदिकमें प्रवृत्ति करता है और इस ही चीजके उपायकी व्यवस्था बनानेका प्रयत्न किया करता है। प्रयोजनके बिना कोई साधारण बुद्धिवाला भी प्रवृत्ति नहीं करता है। तो मोक्ष आदिक उपाय तत्त्वके लिए जो प्रवृत्ति करते हैं वे किस प्रकार प्रवृत्ति करते हैं ? उपाय क्या है ? इसकी व्यवस्था इस परिच्छेदमें संक्षेप रूपसे बताई जा रही है। जो मोक्षको चाहने वाले पुरुष हैं, जिनके विवेक बुद्धि प्रकट हुई है, जब वे उपेय मोक्षस्वरूपका निर्णय कर लेते हैं कि मोक्ष है और मोक्ष पाने योग्य तत्त्व है, उस ही जीवके शान्ति है, कल्याण है। इस प्रकार मोक्षस्वरूपकी जब व्यवस्था कर चुकते हैं, निश्चय कर लेते हैं तो ऐसे विवेकी पुरुषोंके ही तो मोक्षके उपाय बनानेका व्यापार देखा जाता है। जिन लोगोंने मोक्ष तत्त्वका निश्चय ही नहीं किया ऐसे चार्वाक नास्तिक आदिक पुरुषोंके कहाँ मोक्षके उपायकी व्यवस्था देखी जाती है ? वे तो मोक्षमार्गसे पराँगमुख ही रहते हैं। तब यहाँ यह निर्णय किया जाता है कि मोक्षसे उपायकी व्यवस्था किस प्रकार बनती ? यों इस परिच्छेदमें उपायतत्त्वकी सयुक्तिक व्यवस्था बताई जावेगी।

हेतुसे ही सबकी सिद्धि मानने वाले दार्शनिकोंका आशय—इस परिच्छेदके प्रारम्भमें ही यह सुनकर कि उस उपाय तत्त्वकी व्यवस्था बनाना है तो कोई दार्शनिक कहता है कि समस्त उपेय तत्त्व अनुमानसे ही सिद्ध हैं। उपेय तत्त्व किस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार सिद्ध है ? इस प्रसङ्गमें अनुमानवादी सौगत कहते हैं कि अनुमानसे ही सारे कार्य तत्त्वोंकी सिद्धि होती है प्रत्यक्षसे नहीं। प्रत्यक्षके होनेपर भी विवाद देखा जाता है इस कारण अनुमानसे ही सब उपेय तत्त्व सिद्ध हैं अर्थात् हेतुसे ही सब स्वरूपकी सिद्धि है। कहा भी है कि जो कुछ युक्तिसे हम नहीं पारहे हैं उसको हम देखकर भी श्रद्धान नहीं करते, ऐसे अभिप्रायके लोग भी पाये जाते हैं। अब अर्थ और अनर्थके विवेचनकी भी बात सुनो! इसका अर्थ क्या है ? और इसका अर्थ यह नही है ? इस तरहका विवेक अनुमानके आधीन है। अर्थ और अनर्थका विवेचन जब अनुमानके आधीन है और उसमें ही कोई करे विवाद तो उसकी व्यवस्थाके लिए लोग हेतुवादकी व्यवस्था बनाया करते हैं। तो अनुमानसे ही वस्तुतः अर्थकी सिद्धि है। औरकी तो बात क्या ? यह प्रत्यक्ष है, यह प्रत्यक्षाभास है, इस प्रमाणकी व्यवस्था भी अनुमानसे होती है। अन्यथा यदि अनुमान बिना, हेतु बिना प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षाभासकी व्यवस्था बना दी जाय तो उसमें संकर व्यतिकर आदिक दोष उत्पन्न होते हैं। याने प्रत्यक्ष कभी अप्रत्यक्ष बन जाय, प्रत्यक्षाभास कोई प्रत्यक्ष बन जाय, इस तरह एक दूसरेमें जाय, इसे संकर दोष कहते हैं और एक ही आधार इन दोनोंका बन जाय ऐसे अनेक दोष आते हैं और प्रत्यक्षाभास इसका अर्थ है विषय और अनर्थ है विषयाभास इनका विवेचन प्रत्यक्षके आश्रयमें असम्भव है। इस तरह कोई लोग अनुमानसे ही उपेयतत्त्व की सिद्धि है, ऐसा कहते हैं।

हेतुसे ही सर्वसिद्धिके एकान्तके आशयका निराकरण—अब उक्त आरेकाके समाधानमें कहते हैं कि जो लोग हेतुवादसे ही उपेय तत्त्वकी सिद्धि मानते हैं उनकी प्रत्यक्षसे गति न होगी और तब अनुमान आदिकसे भी गति न होगी। अर्थात् उनको किसी भी प्रकार परिज्ञान न हो सकेगा। धर्म, साधन, उदाहरण आदिकका अगर प्रत्यक्षसे बोध न माना जाय तो किसीके अनुमान भी प्रवृत्त नहीं हो सकते। जो दार्शनिक कहते हैं कि उपेय तत्त्वकी सिद्धि हेतुसे है। अनुमानसे है तो वे जब अनुमान बनायेंगे तो उसमें पक्ष हेतु और उदाहरण ये प्रत्यक्षसे सिद्ध होंगे, तभी तो अनुमानकी प्रवृत्ति होगी। जैसे किसीने अनुमान किया कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, जैसे रसोई घर। वहाँ धूम भी है, अग्नि भी है तो ऐसा अनुमान करने वाले ने पर्वतको प्रत्यक्षसे समझा और धूमको प्रत्यक्षसे समझा और रसोई घरको भी प्रत्यक्षसे समझा था तब यहाँ अनुमानका प्रयोग बन सका है। तो प्रत्यक्षसे कुछ भी परिचय न माननेपर किसीके अनुमान भी प्रवृत्त नहीं हो सकता है ? यदि कोई कहे कि अन्य अनुमानसे पक्ष साधन और उदाहरणका ज्ञान हो जायगा सो यों अनुमानान्तरसे पक्ष आदिकका ज्ञान माननेपर उस अनुमानमें भी पक्ष साधन उदाहरण पड़े हुए हैं, उनका ज्ञान न हो सका। तब उस दूसरे अनुमानमें आये हुए पक्षादिकके ज्ञान के लिए अन्य तृतीय अनुमान मानना होगा। उस तृतीय अनुमानमें भी पक्ष साधन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उदाहरणमें पाये जाते हैं। उसकी सिद्धिके लिये अन्य अनुमान मानना होगा। इस तरह अनवस्था दोष हो जायगा। इस कारण यह बात सिद्ध है कि कथञ्चित् साक्षात्कार माने बिना, पक्ष, साधन, उदाहरण आदिक इनका प्रत्यक्षसे बोध माने बिना कहीं अनुमान भी नहीं घटाया जा सकता है और फिर शास्त्रोपदेशसे भी प्रयोजन क्या रहा ? जब सब कुछ अनुमानसे ही सिद्ध किया जाने लगा तो आगममें शास्त्रोपदेशकी क्या आवश्यकता है ? इस तरह प्रत्यक्षसे भी सिद्धि अभ्यस्त विषयमें मान लेनी चाहिए, अर्थात् केवल हेतुसे ही सिद्धि नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष आदिकसे भी ज्ञान होता है यह निर्णय मानना ही चाहिए अन्यथा अर्थात् प्रत्यक्षसे यदि सिद्धि नहीं मानी जाती है तो तब यह ही शंकाकार यह अनुमान प्रयोग करता है कि शब्दादिक क्षणिक हैं तत्त्व होनेसे। तो इस स्वार्थानुमानमें पक्ष तो आया है शब्द और साधन है सत्त्वात् तो पक्ष शब्द और हेतु सत्त्व दोनोंका ही परिचय नहीं बन सकता है तो साध्यकी सिद्धि भी कैसे होगी ? अर्थात् यह अनुमान किया कि शब्द क्षणमें नष्ट हो जाता है, क्योंकि वह सत् है कोई चीज है। तो अनुमान प्रयोगमें पक्ष और साधनका बोध प्रत्यक्षसे हुए बिना अपमानकी प्रवृत्ति न बनेगी। तो जब स्वयं स्वार्थानुमानकी सिद्धि न हुई तो शास्त्रोपदेश क्या है। सब परार्थानुमान रूप है तो शास्त्रोपदेश भी न बन सकेगा। अतः मानना चाहिये कि अनुमानसे ही उपेय तत्त्वकी सिद्धि नहीं किन्तु प्रत्याक्षादिकसे भी उपेय तत्त्वका परिचय होता है।

आगमसे ही सर्व सिद्धिके एकान्तका आशय—कुछ दार्शनिक लोग कहते हैं कि सर्व आगमसे ही सिद्धि होती है। आगमके बिना मणि आदिकका प्रत्यक्ष होनेपर भी यथार्थ निर्णय नहीं बन सकता। जैसे कोई मणि अथवा सोना लाये। अब उस सोनेका यथार्थ निर्णय करना है कि यह वास्तविक सोना है अथवा मिथ्या है तो उसे कसौटीपर घिसते हैं। तो वह घिसना हुआ एक प्रकारका आगम। उससे एक प्रकार का निर्णय किया जाता है कि यह सत्य है। तो प्रत्यक्षसे जान लिया, देख लिया फिर भी उसके पारखी लोग उस स्वर्णादिकको कसौटीपर कसते हैं, उसके बाद उसका फैसला देते हैं। तो इससे सिद्ध है कि सर्वकुछ आगमसे ही निश्चय किया जाता है। इसी प्रकार अनुमानसे भी कोई बात जान ली जाय फिर भी वहाँ आगमकी अपेक्षा होती है। जैसे किसी रोगी पुरुषका रोग और चिकित्सा किए जानेकी बात अनुमानसे भी समझ लिया फिर चिकित्सा आदिक करनेमें वैद्यक शास्त्र आदिक आगमकी अपेक्षा करना होता है। क्या लिखा है वैद्यक शास्त्रमें इस रोगकी दवा क्या बताया है ऋषियोंने इस तरह उस शास्त्रके वाक्योंकी अपेक्षा होती है। इससे सिद्धि है कि कोई यदि यह हठ करे कि फिर तो सब कुछ अनुमानसे ही सिद्ध मान लेना चाहिए जब कि प्रत्यक्ष होनेपर भी स्वर्ण जवाहरात आदिकका यथार्थ निर्णय आगमसे ही होता है, तब फिर वह आगम ही अथवा अनुमान ही मान लेना चाहिए। सो कह रहे हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुमानसे जाने हुए पदार्थोंमें भी चिकित्सा आदिकमें आगमकी अपेक्षा की जाती है। और, भी देखिये जिसका पक्ष आगमसे बाधित है ऐसा अनुमान अपने विषयभूत पदार्थों का गमक नहीं होता। जैसे कोई अनुमान करदे ऐसा ही मिथ्या कि ब्राह्मणोंको मदिरापान करना चाहिए, क्योंकि द्रव द्रव्य होनेसे दूधकी तरह। द्रव द्रव्य कहते हैं उसे जो पानी आदिककी तरह बहता हुआ द्रव्य हो। तो दूध द्रव्य है, उसका पान करनेका हुक्म है तो मदिरा भी द्रव द्रव्य है। दूध और पानीकी तरह एक बहता हुआ द्रव्य है। तो वह भी ब्राह्मण पी ले ऐसा अनुमान बनाया गया है। लेकिन इस अनुमानमें बाधा आती है आगमसे शास्त्रमें बताया गया है कि मदिरापान न करना चाहिए। तो जिन बातोंकी अनुमानसे सिद्धि की जाती हो उसमें यदि आगमसे बाधा आती है तो वह अनुमान साधक नहीं कहलाता। इससे भी सिद्ध है कि सर्व कुछ आगमसे ही सिद्ध हुआ करता है। और भी देखिये ! ब्रह्म तत्त्वकी सिद्धि तो शास्त्रसे ही होती है। सर्व कुछ एक ब्रह्मरूप है, इस बातको न कोई आँखोंसे जान पाता है न इसका अनुमान किया जाता है। उसका विवेचन शास्त्रोंमें लिखा है, सो आगमसे ही समझते हैं कि परब्रह्मादिक तत्त्व है। प्रत्यक्ष और अनुमान तो अविद्याकी पर्यायोंको जानते हैं। अज्ञानसे जो कुछ बात समझी जा रही है इसको ही प्रत्यक्ष जानता है और अनुमान जानता है, किन्तु आकाशका विषय है सन्मात्र तत्त्व। आत्मतत्त्व, परमात्म तत्त्व। उनमें प्रमाणपनेका व्यवहार आगमसे होता है और शास्त्रोंके उपदेशसे यह निर्बाध प्रसिद्ध है कि सब कुछ वह ब्रह्म है आदिक। सो उस ब्रह्म तत्त्वको न प्रत्यक्ष समझता है न अनुमान समझता है तो आगमका जो विषय है उसे प्रत्यक्ष और अनुमान समझता है। तो आगमका जो विषय है उसे प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं जानता इसलिए आगमकी बातमें प्रत्यक्ष और अनुमानसे बाधा नहीं आ सकती। ऐसा कोई लोग कहते हैं कि सर्व कुछ आगमसे सिद्ध है। प्रत्यक्ष और अनुमान ये सब व्यर्थ हैं।

आगमसे सर्व सिद्धिके एकान्तके आशयका निराकरण—अब उक्त शंका के समाधानमें कहते हैं कि जो लोग केवल आगमसे ही सिद्धि मानते हैं प्रत्यक्ष और अनुमान कुछ भी काम नहीं आते हैं तो ऐसा कहने वालोंके तो विरुद्ध अर्थ विरुद्ध मत भी शास्त्रोपदेशसे सिद्ध हो जायगा। कोई पुरुष मानते हैं कि सर्व पदार्थ नित्य ही हैं और मानते हैं आगमसे ही तो अनित्य मानने वाले पुरुष हैं, आगम तो उनके भी हैं। फिर उनके आगमसे क्षणिकपना क्यों न सिद्ध हो जायगा। क्योंकि आगम दोनोंके आगम हैं। सभी लोग अपने अपने शास्त्रोंको समीचीन शास्त्र मानते हैं। तो यदि आगमसे ही पदार्थके प्रमेय तत्त्वकी सिद्धि की जाय तो सभी लोगोंके आगमसे उन उनके सभी मंतव्य सिद्ध हो जायेंगे। तो शंकाकारके विरुद्ध अर्थ और मत भी सिद्ध हो जायेंगे, यहाँ शंकाकार कहता है कि जो सच्चा उपदेश है वहाँ ही तत्त्वकी सिद्धि होती है। तब कैसे विरुद्ध अर्थकी सिद्धि आगमसे हो जायगी। इस शंकाके समाधानमें कहते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं कि ठीक ही कहा है कि सच्चे उपदेशसे तत्त्वकी सिद्धिका कारण तो युक्ति है । यहां पर युक्तिसे ही पदार्थके स्वरूपकी समीचीनताका निर्णय होता है। जो निर्दोष कारणोंसे उत्पन्न हुई बाधाओंसे रहित हो ऐसी युक्तियोंसे ही समीचीनताका बोध होता है । और भी देखिये ये जो समस्त व्यपदेश है वह युक्तिसे निरपेक्ष होकर सही नहीं माना जा सकता है मगर युक्ति जिसमें न चले उसमें युक्तिकी बात भी नहीं माना है । और फिर भी इस उपदेशको सही मान लिया जाय तो परस्पर विरुद्ध अर्थ वाले तत्त्वोंकी भी सिद्धि हो जायगी । अपौरुषेय आगमसे परब्रह्म तत्त्वकी ही सिद्धि होती और कर्मकाण्ड या ईश्वर आदिक प्रवाहकी सिद्धि नहीं होती, यह कैसे कहा जा सकता है ? क्योंकि ऐसा नियम कर सकने वाला कोई उपाय न रहेगा । अर्थात् जो केवल अर्थसे ही सिद्धि मानते हैं उनको विरुद्ध अविरुद्ध सभी तत्त्वोंकी सिद्धि माननी होगी ।

मात्र आगमसे ही सिद्धि मानने वालोंके आगमकी सिद्धिकी भी अशक्यता—और भी देखिये केवल आगमसे ही तत्त्वकी सिद्धि है ऐसी रटन लगाने वाले लोग भला यह बतलायें कि जब स्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षको अप्रमाण मान लिया अर्थात् प्रत्यक्षसे किसी तत्त्वका निर्णय ही नहीं मानते तो जब शब्दका ही ज्ञान न हो सका तो वैदिक शब्दोंका ज्ञान कैसे हो जायगा ? और फिर उन वैदिक शब्दोंसे अर्थ का निश्चय कैसे कर लिया जायगा ? अतः मानना होगा कि आगम मात्रसे उपेय तत्त्वकी सिद्धि नहीं होती, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण व अनुमान प्रमाणसे भी वस्तुस्वरूप की सिद्धि होती है । अब यदि सोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षको प्रमाण मान लेते हो तो अनुमानके अभावमें अर्थात् यह स्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष है प्रमाण है सम्वादी होनेसे और यह अप्रमाण है विसम्वादी होनेसे । इस तरहका अनुमान यदि नहीं मानते तो स्रोत्रइंद्रियजन्य ज्ञानमें प्रमाणता है अथवा अप्रमाणता है इसका बोध किस उपायसे होगा ? तो अनुमानके अभावमें जब सम्वाद और विसम्वादका निर्णय नहीं होता तो यह भी निर्णय न बन सकेगा कि यह प्रमाणभूत है और यह अप्रमाण है इस कारण से जो लोग ऐसी हठ करते हैं कि आगम तत्त्वसे ही सर्व सिद्ध होता है उनको यह मान लेना चाहिए कि आगमसे भी तत्त्वकी सिद्धि है और प्रत्यक्ष अनुमानसे भी तत्त्व की सिद्ध है । यदि वे अनुमानसे और प्रत्यक्षसे तत्त्वकी सिद्धि नहीं मानते हैं, केवल आगमसे ही प्रमाण मानते हैं तो आगमकी भी सिद्धि नहीं हो सकती । क्योंकि यही आगम यही उपदेश प्रमाणभूत है यह निर्णय कैसे किया जायगा ? उपदेशमें जो बात कही गई है वह सत्त्व है यह निर्णय तो युक्तियोंसे हुआ करता है । अब युक्तियोंको प्रमाणभूत मानते नहीं हो तो ऐसी अप्रमाणभूत युक्तियोंसे अथवा आगमसे पदार्थकी सिद्धि न हो सकेगी । अतः यह दूसरा पक्ष भी निराकृत हो जाता है कि जगतमें समस्त तत्त्वोंकी व्यवस्था एक आगमसे ही होती है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हेतु और आगम दोनोंसे सिद्धिका निर्णय यहाँ दोनों प्रकारके आग्रह न रखने चाहिएं कि उपेय तत्त्वकी सिद्धि केवल हेतुसे ही होती है, प्रत्यक्ष और आगम से नहीं होती। और दूसरा आग्रह यह भी न रखना चाहिए कि उपेय तत्त्वकी सिद्धि केवल आगमसे ही होती है। हेतुसे ही सर्व सिद्धि मानने वालोंके प्रत्यक्ष आदिकसे कुछ परिचय न हो सकेगा और प्रत्यक्षका ज्ञान हुए बिना अनुमान भी अप्रमाण हो जायगा और जो केवल आगमसे ही सर्व तत्त्वोंकी सिद्धि मानते हैं उनके यहाँ कोई तत्त्व सिद्ध न हो सकेगा, क्योंकि उनके विरुद्ध भी अनेक आगम पाये जाते हैं। तब अनिष्ट तत्त्वको भी प्रमाणभूत मानना होगा, इस कारण यह निर्णय रखना चाहिए कि जहां हेतुसे प्रमाण सिद्ध करनेकी मुख्यता है वहाँ हेतुसे तत्त्व सिद्ध है। जहाँ आगमसे प्रमाण माननेकी मुख्यता है वहाँ आगमसे तत्त्वकी सिद्धि होती है।

प्रत्यक्ष और अनुमानसे ही सर्वसिद्धिके एकान्तका निराकरण— यहाँपर कोई वैशेषिक व सौगत कहते हैं कि सब तत्त्वोंकी सिद्धि प्रत्यक्ष और अनुमान से ही होती है। उनके समाधानके लिए कह रहे हैं कि ऐसा कहने वाले ये शङ्काकार सत्यवादी नहीं हैं। देखिये ! ग्रह उपग्रह आदिकका और ग्रहोंके फलविशेषका ज्योतिष शास्त्रसे ही परिचय मिलता है। जैसी कि लोकमें प्रसिद्धि है उन चन्द्र सूर्य आदिक ग्रहोंके ग्रहणकी अथवा राहु केतु द्वारा जो चन्द्र सूर्यका ग्रहण होता है उसकी मालूमात ज्योतिष शास्त्रसे ही होती है, प्रत्यक्ष और अनुमानसे नहीं होती। और, ऐसे ग्रहणका फल क्या है ? वह भी ज्योतिष शास्त्रसे लोग विदित करते हैं। उपदेशके बिना, आगमके बिना, ज्योतिष शास्त्रमें कहे हुये वचनोंके आलम्बनके बिना केवल प्रत्यक्ष और अनुमानसे ही ज्योतिष ज्ञान आदिककी समझ नहीं हो सकती है। शङ्काकार कहता है कि सर्वज्ञदेवके तो प्रत्यक्षसे ही उस ज्योतिष ज्ञान आदिकका परिचय हो जायगा और अनुमान जानने वाले पुरुषोंको अनुमानसे इन समस्त ज्योतिष ज्ञानों का परिचय हो जायगा। फिर आगम और उपदेशपर जोर देनेका क्या प्रयोजन है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सर्व पुरुषोंको भी जो योगि प्रत्यक्षसे पहिले उपदेश न मिला होता तो उनको इन सब ज्योतिषज्ञान आदिककी साक्षात् प्रतिपत्तिका ज्ञान न बन सकता था, अनुमानाभावकी तरह। जिन पुरुषोंने तपश्चरण ध्यान आदिक से सर्वज्ञता प्राप्त की है उन्होने भी उस सर्वज्ञतासे पहिले उपदेशका आलम्बन किया था और इस परम्परासे चले आये शासनके अनुसार मार्ग बनाकर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की है। अतः आगमकी कार्यकारिताका निषेध नहीं किया जा सकता। वह पुरुष आगमरूप और आगमके ही निज अर्थका ज्ञानरूप भावनाको उन्होंने अधिकाधिक की थी तब अतीन्द्रिय प्रत्यक्षको प्राप्त कर सके हैं तो जो आगम सम्बन्धी तत्त्वों का ध्यान और भावना उत्कृष्ट नहीं होता। तब उपदेशके बिना अर्थात् उपदेशका कुछ भी सहारा लिए बिना किसीके सर्वज्ञता प्राप्त नहीं हुई और अनुमान जानने वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुरुषोंके भी अत्यन्त परोक्ष अर्थमें परोपदेश पाये बिना साध्यके साथ अविनाभाव रखने वाले साधन धर्मकी प्रतिपत्ति नहीं होती। जो कोई भी पुरुष अनुमान करते हैं तो जिस साध्यका अनुमान करते हैं वह अत्यन्त परोक्ष अर्थमें ही है अथवा अत्यन्त परोक्ष किन्हीं भी तत्त्वोंके सम्बन्धमें कोई अनुमान भी करे तो परोपदेशका सहारा कुछ होता ही है और अनुमान जानने वाले पुरुष भी अभावको या अत्यन्त परोक्ष अर्थको नहीं जानते अथवा उनके द्वारा भी जो साधन धर्मका ज्ञान होता है कि यह साध्यके साथ अविनाभावी है यह सब भी परोपदेशके बिना नहीं हो सकता है। व्याप्ति का ज्ञान करना आदिक बातें परोपदेशसे ही लोग प्राप्त करते हैं यह बात स्पष्ट विदित है। इस कारण ये दोनों ही एकान्त करना युक्त नहीं है। कोई दार्शनिक मानते हैं कि सर्व कुछ हेतुसे ही जाना जाता है। कोई दार्शनिक जानता है कि सर्व कुछ आगमसे ही जाना जाता है। ये दोनों एकान्त संगत नहीं हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७७॥

हेतुवाद व प्रमाणवादके उभयैकान्तका निराकरण—अब तक यहाँ दोनों एकान्तोंका निराकरण किया है। पहिला एकान्त यह था कि सब कुछ हेतुसे ही जाना जाता है, दूसरा एकान्त यह था कि सब कुछ मात्र आगमसे ही जाना जाता है, इन दोनों एकान्तोंका निराकरण होनेपर अब कोई तीसरा शंकाकार कहता है कि दोनों एकान्त मान लीजिए। जब एक एक एकान्त माननेमें दोष आया है तब दोनोंको स्वीकार कर लीजिए! तो दोष न रहेगा अर्थात् हेतुसे ही सब कुछ जाना जाता है, ये दोनों एकान्त मान लीजिए! इसके उत्तरमें कहते हैं कि दोनों एकान्त परस्परमें विरुद्ध हैं, इस कारण एकमें दोनों एकान्तोंका प्रवेश होना असम्भव है। जो स्याद्वाद नीतिसे विद्वेष रखते हैं वे पुरुष कथञ्चित्‌के ढङ्गसे हेतुवाद और आगमवादको नहीं मानते, किन्तु एक ही दृष्टि रखकर इनका एकान्त स्वीकार करते हैं। यदि कथंचित् अर्थात् अपेक्षा रूपसे उन दोनोंको मान लिया जाय तो इसमें विरोध नहीं आता। इस कारणसे हेतुवादसे ही सब कुछ जाना जाता है, आगमवादसे ही सब कुछ जाना जाता है, ये दोनों एकान्त नहीं सिद्ध होते।

हेतुवाद व आगमवादके सम्बन्धमें अवाच्यतैकान्तका निराकरण—अब चौथा दार्शनिक कहता है कि फिर तो इस प्रसङ्गमें अवाच्य तत्त्व ही मान लेना चाहिए। हेतुवादसे सब परिचय है, आगमसे सब परिचय है, यह सब कुछ नहीं कहा जा सकता। इस कारण यह तो अवक्तव्य ही है, ऐसा एक अवक्तव्यपनेका एकान्त ही स्वीकार करना चाहिए। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि पदार्थ युक्तिसे भी वाच्य नहीं है और आगमसे भी वाच्य नहीं है, सर्वथा ही अवाच्य है, ऐसा एकान्त तो स्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चन बाधित है। इतना तो सामने कहा जा रहा है। शंकाकारकी युक्ति और आगम दोनोंसे तत्त्व अवाच्य है, इन शब्दोंमें कहते हुए स्पष्ट दीख रहा है। तो जो पुरुष ऐसा कहते हैं कि तत्त्व अवाच्य ही है, न युक्तियोंसे वाच्य हैं न आगमसे, उनके कथनमें अपने आपके वचनमें विरोध आता है। जैसे कोई कहे कि मैं बंध्यापुत्र हूं अथवा मैं मौनव्रती हूं, तो उसकी ये सब बातें स्ववचन बाधित हैं। इसी प्रकार कोई कहे कि तत्त्व सर्वथा अवक्तव्य है, तो उसकी ऐसी अवक्तव्यपनेकी बात कहना स्ववचन बाधित है और इस अवाच्यताके एकान्तके निराकरणमें विस्तारपूर्वक पहिलेके प्रकरणमें कहा ही गया है। निष्कर्ष यह समझना कि युक्तिवाद और आगमवादके सम्बन्धमें अवाच्यताका एकान्त भी ठीक नहीं है। इस तरह चार एकान्तोंका निराकरण करनेसे कि हेतुसे पदार्थ सिद्ध है, आगमसे पदार्थ सिद्ध है, दोनों एकान्तोंसे पदार्थ सिद्ध है व अवक्तव्यका एकान्त है, इन चार एकान्तोंका निराकरण करनेसे यद्यपि यह बात सामर्थ्यसे सिद्ध हो जाती है, युक्तिवाद और आगमवादके सम्बन्धमें स्याद्वाद नीति ही स्पष्ट और पुष्ट है अर्थात् कथञ्चित् अनुमान तत्त्व साधक है, कथञ्चित् आगम तत्त्व साधक है, यह सब सामर्थ्यसे सिद्ध होनेपर भी उसके सम्बन्धमें कुछ भी कोई आशंका रखे तो उस आशंकाको दूर करनेके लिये आचार्यदेव कहते हैं।

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥७८॥

हेतुसाधित साध्य व आगमसाधित साध्यकी परिस्थितियां—वक्ता यदि अनाप्त है अर्थात् आप्त नहीं हैं तो जो कुछ हेतुसे साध्य होता है याने जो उपेय तत्त्व हेतुसे साध्य करने योग्य है वह हेतुसे साधित हुआ करता है और वक्ताके आप्त होने पर याने सर्वज्ञ आप्त वक्ता हो तब ही तो उनके वाक्यसे जो उपेय तत्त्व साध्य होता हैं वह आगम साधित होता है। यहाँ प्रश्न होता है कि वे आप्त और अनाप्त क्या होते हैं कि जिनके होनेपर वचनोंसे साधित साध्य अथवा अर्थ तत्त्व आगमसे साधित होता है और आप्तके न होनेपर हेतुसे जो साध्य होता है वह हेतु साधित होता है, यह विभाग बन सके। इसके लिए आप्त और अनाप्तका स्वरूप समझना आवश्यक है। ऐसा प्रश्न होनेपर उत्तर देते हैं कि जो पुरुष जिस प्रकरणमें अविसम्वादी है वह वहाँ आप्त कहलाता है और उससे भिन्न अर्थात् जो जिस सम्बन्धमें अविसम्वादी नहीं है वह अनाप्त कहलाता है। जो समस्त तत्त्वोंके सम्बन्धमें अविसम्वादी है वह सर्वदेशतया आप्त कहलाता है। इस लक्षणके सुननेके पश्चात् यह प्रश्न सामने आता है कि उस अविसम्वादका अर्थ क्या है जिस अविसम्वादसे अविसम्वादकका स्वरूप समझा जाय ? तो इस प्रश्नका उत्तर यह है कि तत्त्वका प्रतिपादन होनेका नाम अविसम्वाद है, क्योंकि उस अविसम्वादमें शास्त्रके उपदेशके अर्थका ज्ञान हो रहा है। शास्त्रोपदेश का यथार्थ अर्थज्ञान हो रहा है जो कि अबाधित निश्चयरूप है वह साक्षात् अथवा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

असाक्षात् रूपसे निर्णीत किया जाता है। साक्षात् ज्ञान तो प्रत्यक्षज्ञान है और असाक्षात्ज्ञान स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ५ प्रकारका है। तो ये सब ज्ञान अर्थज्ञानसे होते हैं। वास्तवमें तो उन समस्त ज्ञानोंका फल है संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय दोषका निराकरण करना। सच्चा ज्ञान जब उदित होता है तो वह इस दोषको दूर करता हुआ ही उदित होता है। जैसे जब सूर्य उदित होता है तो अंधकारको नष्ट करता हुआ ही उदित होता है। परिज्ञानका यह कार्य है कि वह संशय विपर्यय और अनध्यवसाय न रहने दे। ऐसा अविसम्वाद लक्षण जहाँ पाया जाय ऐसा पुरुष अविसम्वादक है और वह ही आप्त कहलाता है, परन्तु जो अनाप्त होता हैं वह किसी समय विसम्वादक भी कहा जाता है। जो यथार्थ ज्ञानादिक गुण वाला पुरुष है उसके विसम्वादकपना नहीं बनता है।

आप्त अनाप्तका अनुमान प्रयोग द्वारा निर्णय—आप्त वही कहलाता है जो अविसम्वादक है इसी कारण धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंमें जैमिनी या अन्य कोई वेदान्त कर्ता कोई भी आगम मात्रका आलम्बन रखने वाला आप्त नहीं कहला सकता, क्योंकि धर्मादिक उनके अतीन्द्रिय अर्थोंका परिज्ञान नहीं है, तथागतकी तरह। इस अनुमान प्रयोगमें जो उदाहरण दिया है वह उदाहरण साधन धर्मसे रहित नहीं है। क्योंकि मीमाँसक सिद्धान्तमें यह कहा गया है कि तथागतका श्रुतिके अर्थधर्मोंका परिज्ञान नहीं होता तो उन बुद्धादिकका जो धर्मादिक उपदेश है वह केवल व्यामोहसे होता है, ऐसा स्वयं मीमांसकोंने कहा है। और यह भी हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि जैमिनी अथवा ब्रह्मा आदिककी श्रुत्यर्थका परिज्ञान सर्वथा असम्भव है, ऐसा स्वयं स्वीकार करना पड़ता है शकाकारको, क्योंकि वह श्रुत्यर्थ परिज्ञान क्या प्रत्यक्ष है या स्रोत्रइन्द्रियजन्य है। याने आगम सम्बन्धित है श्रुतिसे आया हुआ है ये दो विकल्प किए गए हैं। इनमें प्रथम विकल्प यदि मानते हैं कि वह प्रत्यक्ष है तो यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि वे जैमिनी आदिक सर्वज्ञ नहीं हैं। क्योंकि आगम मात्रका उन्होंने आलम्बन किया है। ऐसा असर्वज्ञ जैमिनी आदिकके अतीन्द्रियार्थ ज्ञान नहीं है। इसका हेतु यह है कि उनके दोष और आवरणके क्षपका अतिशय नहीं पाया जाता। केवल प्रतिनियत कोई दोषका क्षय हो जाय तो इतने मात्रसे ही धर्म अधर्म आदिक परोक्षभूत अर्थोंका साक्षात्कार करना नहीं बनता। सूक्ष्म आदिक अर्थोंका साक्षात्कार करना तो दोष और आवरणके क्षयका अतिशय करनेसे होता है अर्थात् सर्वरूपसे दोष और आवरणका क्षय होता है तो उससे सर्वज्ञता प्रकट होती है। तब प्रतिनियत दोष और आवरणके क्षय वाले अर्थात् कुछ साधारण जनोंसे विशिष्ट बुद्धि रखने वाले पुरुषोंके धर्म अधर्म आदिकका परिज्ञान श्रुतिके अर्थका परिज्ञान साक्षात् नहीं है, प्रत्यक्ष नहीं है। तब कोई ऐसा मनमें सोचे कि श्रुतिमें अविसम्वाद होनेसे उन सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका परिज्ञान हो जायगा सो भी न कहा जा सकेगा। श्रुतिमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अविसम्वाद है इससे आगम सम्बन्धी ज्ञानका परिज्ञान कर देना, उन सूक्ष्म आनिक अर्थोंका परिज्ञान कर देना यह बात यों युक्त नहीं है कि पहिले श्रुतिकी या अर्थज्ञान की ही बात असिद्ध है।

श्रुतिसे सर्वज्ञताकी अनुपपत्ति—यदि कोई यह माने कि श्रुतिसे सर्वज्ञता प्रकट होती है और सर्वज्ञतासे फिर श्रुतिमें अविसम्वाद सिद्ध होता है तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष उपस्थित होता है। जब श्रुतिका अविसम्वाद सिद्ध हो तब श्रुतिसे सर्वज्ञता प्रकट हो। जब सर्वज्ञता प्रकट हो तो वह श्रुतिका अविसम्वाद समझा जाय। देखिये जिसका सम्वाद प्रसिद्ध नही होता है स्पष्ट परिचय प्रमाणीक परिचय जिससे सिद्ध न हो ऐसे श्रुतिसे जैमिनी आदिक किसीको भी परमार्थसे परिज्ञान सम्भव नहीं हो सकता। यदि श्रुतिका सम्वाद सिद्ध न होनेपर भी परमार्थ ज्ञान मान लिया जाय तो जो लोग ऐसा कहते कि एक अंगुलीके अग्रभागपर सैकड़ों हाथी बैठे हैं तो वचनसे भी अपने विषयका ज्ञान सही बन जाना चाहिए। जो जिसका सम्वाद प्रसिद्ध नहीं है ऐसी श्रुतिसे परमार्थका परिज्ञान मानना संगत नहीं है और परमार्थ वेदीके बिना अर्थात् सर्वज्ञपनेके बिना तत्त्वका प्रतिपादनरूप अविसम्वाद भी नहीं बनता। तब अन्योन्याश्रय दोष सही ही तो हुआ। इस कारणसे सर्वथा यह एकान्त ग्रहण न किया जा सकेगा कि आगमसे ही सर्व पदार्थोंकी सिद्धि होती है। वहाँ यह ही निर्णय करना होगा कि यदि वक्ता आप्त है तब तो उसके वाक्यसे ही पदार्थ सिद्ध मान लेना चाहिए और यदि वक्ता अनाप्त है तब जो बात हेतुसे साध्य होती है उसे हेतुसे ही साधना चाहिए। इस विषयमें स्याद्वादकी यह तथ्यभूत नीति है और ऐसा देखा ही जा रहा है। जो आगम प्रमाणकी बुद्धिसे अनेक तत्त्वोंका निर्णय करते हैं और आगम प्रमाणकी बात पेश करके विरुद्ध तत्त्वोंसे मुख मोड़नेका एक पुष्ट उपाय बनाते हैं। इससे सिद्ध है कि आगम भी प्रमाणीक है और हेतु और अनुमान भी प्रमाणीक है और उनकी सिद्धि इन अपेक्षाओंसे अपने अपने विषयमें घटित कर लेना चाहिए। यों एकान्त यह न रहा कि केवल हेतुसे ही अर्थ सिद्धि है अथवा आगमसे ही अर्थ सिद्धि है।

श्रुतिके प्रामाण्यकी असिद्धि—यहाँ शंकाकार मीमांसक कहता है कि श्रुतिकी प्रमाणता अविसम्वाद होनेके कारण नहीं है किन्तु स्वतः ही है अर्थात् आगम स्वयं आगमके द्वारा प्रमाण है। उसमें यह तर्क करना कि विसम्वाद है या नहीं। इसकी आवश्यकता नहीं है। श्रुतिकी प्रमाणता अविसम्वादसे नहीं मानी गई है किन्तु स्वतः मानी गई है इसी कारणसे इतरेतराश्रय आदिक दोष यहाँ सम्भव नहीं हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि श्रुतिमें प्रमाणता स्वतः नहीं हो सकती, क्योंकि श्रुति अचेतन है। जो अचेतन हो उसमें प्रमाणता स्वतः नहीं हुआ करती है घटकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तरह। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये स्वयं प्रमाणरूप नहीं हैं क्योंकि अचेतन हैं जब घट पर आदिक अचेतन हैं इसी प्रकार श्रुति भी अचेतन है। अतः वह स्वतः प्रमाणभूत नहीं है शंकाकार कहता है कि सन्निकर्ष तो अचेतन है लेकिन उनकी प्रमाणता मानी गई है। नैयायिक सिद्धान्तमें सन्निकर्ष आदिक अचेतन हैं। इसपर भी प्रमाणता मानी गई है तब इस हेतुमें अनेकान्तिक दोष आता है। जो जो अचेतन हो वह स्वतः प्रमाण नहीं होता यह व्याप्ति घटित नहीं होती। देखिये सन्निकर्ष आदिक अचेतन हैं फिर भी ये प्रमाणभूत माने गए हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस अनुमानमें दिए गए हेतुको सदोष कहना अयुक्त है। सन्निकर्ष आदिकको प्रमाणरूप माना ही नहीं है और कदाचित सन्निकर्षकी प्रमाणता मान भी ली जाय क्योंकि वह कुछ अविसम्वादी ज्ञानको मानना पड़ता है तिसपर भी उपचारसे ही प्रमाणता कही जा सकती है। मुख्यरूपसे तो सन्निकर्षमें प्रमाणता नहीं कही जा सकती सन्निकर्ष आदिक अविसम्वादी ज्ञानके कारणभूत हैं इस कारणसे उपचारसे सन्निकर्षमें प्रमाणताकी सिद्धि मान सकते हैं फिर भी श्रुतिमें तो उपचारसे भी प्रमाणता माननेमें गुंजाइस नहीं है, क्योंकि श्रुति अविसम्वादी ज्ञानका कारण नहीं है। अतएव श्रुति उपचार मात्रसे भी प्रमाणभूत नहीं है। श्रुतिके अर्थज्ञानकी प्रमाणता असिद्ध है। श्रुति अविसम्वादी ज्ञानका कारण नहीं है, जिससे उपचारसे भी प्रमाण माना जाय यह बात चौथी कारिकाके इस प्रकरणमें विस्तारपूर्वक बतायी गई है।

आप्तवचनका प्रामाण्यसे सम्बन्ध—आप्तका वचन प्रमाणताके योग्य है, क्योंकि आप्त वचन प्रमाणका कारण है और प्रमाणका कार्य है। आप्त वचन प्रमाणकारणका तो यों है कि वह अतीन्द्रिय अर्थके प्रत्यक्षसे आप्त वचनकी उत्पत्ति हुई है। अतएव वह प्रमाण कारणक है अर्थात् प्रमाण है कारण जिसका उसे कहते हैं प्रमाणं अकारणक। चूंकि सर्वज्ञ देवके अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न हुआ अतएव वह प्रमाण कारण है आप्त वचनमें अतएव आप्तवचन प्रमाणरूप है और आप्तवचन प्रमाण कार्यक है अर्थात् आप्त वचनसे प्रमाणकी निष्पत्ति होती है क्योंकि वह अतीन्द्रियार्थ विषयक सिद्धान्तकी उत्पत्ति वहींसे हुई है और अतीन्द्रियार्थ विषयक बुद्धिका उत्पादन आप्तवचनसे हुआ है स्वर्ग नरक परमाणु आदिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान इस सर्वज्ञकी परम्परासे हुआ है अतएव आप्तवचन प्रमाण कार्यक है परन्तु यह बात श्रुतिमें सम्भव नहीं है क्योंकि श्रुतिको सर्वथा ही आप्तके द्वारा नहीं कहा गया माना गया है। स्वयं श्रुतिको प्रमाण मानने वाले मीमांसक भी श्रुतिको किसीके द्वारा रचा गया है ऐसा नहीं मानते। तो सर्वथा आप्तके द्वारा नहीं कहा गया अतएव श्रुतिमें न प्रमाण कारणकता है न प्रमाण कार्यकपना है।

उदाहरणपूर्वक श्रुतिके प्रामाण्यका अनिर्णय—जैसे पिटकत्रयमें न प्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणकता है न प्रमाण कार्यकता है। बौद्ध सिद्धान्तमें जो मुख्य विभाग है वह तीन पिकटके रूपमें है—ध्यान, अध्ययन, अनुष्ठान आदिकका प्रतिपादन करने वाले शास्त्र पिकटत्रय कहलाते हैं। तो पिकटत्रय आदिकमें पौरुषेयता स्वयं सौगत आदिकने माना है और वेदवादियोंने श्रुतिको अपौरुषेय माना है। उस ही पिटकत्रयकी बात उदाहरण में कही जा रही है। यहाँ शंकाकार कहता है कि पिकटत्रयमें तो वक्ताका दोष है, उसके रचने वाले सदोष हैं अतएव उसमें प्रमाणता नहीं कही जा सकती। पर श्रुतिमें भी वक्ताका दोष नहीं आता, क्योंकि श्रुतिका हम किसीको वक्ता ही नहीं मानते। तो वक्ताका दोष न आनेके कारण श्रुतिमें प्रमाणता हो जाती है। इस कारण पिटक-त्रयका दृष्टान्त देकर श्रुतिको अप्रमाण बताना युक्त नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें पूछते हैं कि यह शङ्काकार ये विभाग किस तरहसे सिद्ध करेगा कि पिटकत्रयके वक्तामें दोष है इस लिए वह अप्रमाण है और श्रुतिमें वक्ताका दोष नहीं है इस कारण वह प्रमाण है। यदि शङ्काकार यह बात कहे कि पिटकत्रय आदिक पौरुषेय हैं, किसी पुरुषने उन्हें बनाया है, ऐसा स्वयं उनके अनुयायी मानते हैं और वेदवादी श्रुतिको अपौरुषेय मानते हैं। इससे यह विभाग बन जायगा कि पिटकत्रयमें तो वक्ताके दोष हैं और श्रुतिमें वक्ताके दोष नहीं हैं। इस आशङ्काका समाधान करते हुए कहते हैं कि वाह रे शंकाकार, अब यह दूसरोंके द्वारा माना गया और खुदके द्वारा नहीं माना गया कारण बताकर किसीको पौरुषेय सिद्ध करना, किसीको अपौरुषेय सिद्ध करना, यह व्यवस्था जो बना रहे हैं वह तो हास्यास्पद व्यवस्था है। युक्तियोंसे ही व्यवस्था कायम की जा सकती है। केवल मानने मात्रसे व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती। इस ही मानने और न मानने आदिकके द्वारा यह बात कहना कि कर्ताका स्मरण नहीं हो रहा, दूसरी जगह कर्ताका स्मरण हो सकता है ये सब बातें भी निराकृत हो जाती हैं।

वेदादिमें भी अपने अनुयायियों द्वारा अपनी मान्यताका प्रसङ्ग—यहाँ मीमांसक शंकाकार ऐसी व्यवस्था जो बना रहा है कि कर्ताका स्मरण आदिक होना और जिनका कर्ता नहीं देखा गया उनकी समानता जैसी न होना यह केवल एक मानने मात्रसे व्यवस्था बनायी और पिकटत्रयका स्मरण होना देखे गये कर्ताके समान मानी गई यह बात अपने आपके मानने और न माननेसे न बन जायगी। इस तरह तत्त्वकी व्यवस्था नहीं बनती है क्योंकि वेद हो अथवा पिकटत्रय ही सभीमें अपने अपने अनुयायियों द्वारा अपनी अपनी मान्यता पड़ी हुई है। कोई शंकाकार अपनी मानी हुई बातसे तो दूसरेके सिद्धान्तका निराकरण नहीं कर सकता। यदि शंकाकार यह कहे कि पिटकत्रयके तो बुद्ध वक्ता हैं तो यहाँ भी समझ लीजिये कि वेदके ब्रह्मा वक्ता हैं तो प्रश्न और उत्तर कैसे समान न होवे जायेंगे ? जैसे पिकटत्रयमें बुद्ध वक्ता है ऐसा सौगत भक्त मानते हैं, उसी प्रकार वेदमें भी ये काणाद ऋषि अष्टकोंका कर्ता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माना है। पौराणिक लोग ब्रह्माको कर्ता मानते हैं। अन्य दार्शनिक कालासुरको वक्ता मानते हैं। तो जैसे पिटकत्रयके बुद्ध वक्ता हैं इसी प्रकार वेदके भी अनेक वक्ता हैं, ऐसा स्वयं अनुयायियोंने माना है। तब उनमें यह निर्णय करना कि पिटकत्रय आदिक के तो कर्ताका स्मरण हो जाता है, इ :का कर्ता और श्रुतिमें कर्ताका स्मरण नहीं हो सकता, यह विभाग नहीं किया जा सकता। बहुत बहुत विचार करनेके बाद भी पिटकत्रयको वक्तृत्व अङ्गीकार करनेमें और वेदके अङ्गीकार न करनेमें यह मीमांसक शंकाकार व्यवस्थित होगा, यह कैसे माना जा सकता है ? प्रमाणबलसे ही तो कुछ सिद्ध करना चाहिये। श्रुतिके कोई वक्ता नहीं है यह बात प्रमाणबलसे सिद्ध नहीं की जा सकती।

श्रुतिके अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि श्रुतिका कोई रचयिता नहीं है यह बात प्रमाणसिद्ध है। प्रमाण है कि वेदका अध्ययन सारा वेदके अध्ययन पूर्वक होता है। अर्थात् जो आज अध्ययन चल रहा है वह परम्परासे अध्ययनपूर्वक अध्ययन आ रहा है, क्योंकि वह वेदाध्ययन शब्दसे वाच्य है। जैसे आजका अध्ययन है तो वह पहिलेसे अध्ययनपूर्वक चला आ रहा है इस कारणसे वेदमें वक्ताका अभाव है यह बात प्रमाणसे सिद्ध होती है। वेदका अध्ययन पुरातन अध्ययन पूर्वक चला आ रहा है, उसका कर्ता कोई नहीं है। तो देखिये ! अब वेदके वक्ताका प्रमाणसे अभाव बना। केवल मानने मात्रसे न मान लो। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इसी हेतुको देकर तो पिटकत्रय आदिकमें भी वक्ताका अभाव बताया जा सकता है। वहाँ भी यह कहा जा सकता है कि पिकटत्रयका भी अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला आरहा है, उसका भी कोई रचयिता नहीं है, वेदाध्ययनकी तरह। यों सभी लोगोंने अपने अपने सिद्धान्तको अध्ययनपूर्वक बताया और इस शंकाकारको भी अध्ययनपूर्वक ही कहनेको मजबूर करें तो ऐसा बोलनेमें कहीं मुख टेढ़ा न हो जायगा। जैसे अपन लोग कहते हैं कि वेदका अध्ययन वेदाध्ययन पूर्वक है। उसका रचयिता कोई नहीं है। इसी तरह सभीके लिए भी यह कहा जा सकता है कि आगमका अध्ययन अध्ययनपूर्वक है। उसका भी रचयिता कोई नहीं है। उसकी भी प्रमाणता स्वतः ही है। दूसरी बात यह है कि यह कहना कि अध्ययन शब्द द्वारा वाच्य है इसलिए यह अध्ययन पहिले अध्ययनपूर्वक है तो इस हेतुमें अनेकांतिक दोष आता है। देखो पिटकत्रय और भी आधुनिक कार्य है, इसका वक्ता विद्यमान है, फिर भी यह अध्ययन शब्द द्वारा वाच्य कहलाता है। इस कारण यह भी अकर्तक बन जायगा। यों अनेकान्तिक दोष आता है। शंकाकार कहता है कि हम अध्ययनके साथ वेद विशेषण और लगाये हुए हैं कि वेदाध्ययन शब्दसे वाच्य है। यों लगा देंगे, सो यहाँ वेदाध्ययन वाच्यपना पिटकत्रयमें सम्भव है नहीं, इस कारण अनेकान्तिक दोष न होगा। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यों तो हम अध्ययनके साथ पिटकत्रय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिक दोष लगा लेंगे, जिनका यह अर्थ होगा कि इस पिटकत्रयका अध्ययन अध्ययन पूर्वक है। पिटकत्रयका अध्ययन होनेसे जब इस हेतुका वेदादिकमें भी अभाव है अतएव यह अनुमान भी हो जायगा इसमें कोई व्यभिचार दोष न आयगा और इस तरह जब यह अनुमान भी दोषरहित हो गया कि वेदकी तरह जो अवेद है, पिटकत्रयादिक हैं उनमें भी अपौरुषेयपन और प्र० यका कारणपना होना मीमांसकोंके यहाँ प्रवर्तक बन जायगा अर्थात् पिटकत्रयके अनुष्ठानमें ज्ञानके अनुष्ठानमें अथवा ज्ञानमूर्तिकी वंदनारूपमें सभीमें फिर अवेदकी भी प्रमाणता आ जायगी। और, यदि नहीं आती है तो वेदमें भी प्रमाणता न रहेगी, यों कि सर्व कुछ प्रश्न समाधान दोनों जगह एक समान होते हैं।

सर्व आगमोंमें रचनाशैली व मंत्रादिशक्तिकी समानता हो सकनेसे श्रुतिकी अविशेषता—यदि शंकाकार यह कहे कि वेदमें तो कठिन कठिन बोलना, कठिन सुनना ये अतिशय पाये जाते हैं इस कारण अन्य ग्रन्थोंको व वेदको एक समान कैसे कहा जा रहा है ? तो इसका समाधान यह है कि कठिन बोलना, कठिन सुनना यह सब जगह किया जा सकता है। इन अतिशयोंसे यदि प्रमाणता मानी जाती है तो यह अतिशय सभी जगह किया जा सकता है। परोक्ष मंत्र शक्ति भी अन्य सब जगह देखी जाती है। शंकाकार यह कहता कि वेदमें परोक्ष मन्त्र शक्ति है, इसमें भी अतिशय विशेष है। तो यह बात भी सब जगह पायी जा सकती है। केवल वेदोंके मंत्रोंमें शक्ति नहीं होती यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस प्रकारका निर्णय रखनेमें प्रमाणसे बाधा आती है। शंकाकार कहता है कि वैदिक ही मंत्र दूसरी जगह उपयुक्त हुए हैं, यों वैदिक मंत्र ही शक्तिमान हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि जितने भी वेदमें प्रयुक्त मंत्र हैं वे सब जैन आगममें आये हुए हैं और जैन आगममें विद्यानुवाद नामक दशम पूर्वमें बहुत प्रकारके मंत्रोंकी उपलब्धि है। जैसे कि समुद्र आदिक स्थानोंमें रत्नोंकी उत्पत्ति होती है फिर चाहे वे कितने ही रत्न राज घरानेमें पहुंच जायें लेकिन राज घरानेमें जो पहुंचे हैं वे कहीं राज घराने में उत्पन्न हुए तो नही हैं। उत्पत्ति तो उन रत्नोंकी समुद्र या किसी विशिष्ट खानमें होती है। जितने भी वे रत्न लाये गए वे समुद्र अथवा खान आदिकसे ही तो लाये गए हैं। उन खान अथवा समुद्रादिकमें ही अनेक रत्नोंकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार समस्त आगमका एक देश है विद्यानुवाद पूर्व तो उस दशम पूर्वसे मंत्रकी उत्पत्ति हुई है और उस विद्यानुवादसे ही सरल मंत्र उद्भूत हुए हैं, और विस्तारको प्राप्त हुए हैं। वेद भी उस आगमका एक देश कथन है। तो विद्यानुवादका एक देश मंत्रोंका जो वेद है उससे रत्नोंका उद्भव नहीं है किन्तु विद्यानुवाद नामक दशम पूर्वसे उन समस्त मंत्रोंका उद्भव है।

अनादि और पौरुषेयत्वकी अप्रामाण्यमें अकारणता—शंकाकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहता है कि वेद अनादि है और अपौरुषेय है इस कारणसे वेद प्रयुक्त मंत्रमें ही अविसम्वादकपना हो सकता है। अन्य जगह जो मंत्र हैं वे अविसम्वादक नहीं हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा भाव रखना अयुक्त है, क्योंकि वेद प्रयुक्त मंत्रोंमें ही अविसम्वादकपना है यह बात असिद्ध है और वेद अनादि है अपौरुषेय है, यह भी असिद्ध है और मानो वेदकी अनादिता सिद्ध हो जाय अथवा वह पौरुषेय नहीं है यह बात सिद्ध हो जाय फिर भी वह अविसम्वादक है यह बात कैसे निश्चयमें लायी जा सकेगी? म्लेच्छ जो द्वीपान्तरके निवास हैं उनका व्यवहार है कोई अटपट, जैसे मानो विवाह कर देना आदिक नास्तिकपनेका व्यवहार है। तो म्लेच्छ व्यवहार भी अनादि ही तो है याने नीच पुरुषोंमें कुल क्रमसे खोटी बात चली आ रही है तो अनादि हीसे आई हुई कोई प्रमाणभूत हो जाय सो तो बात नहीं बनती। अथवा वह व्यवहार अपौरुषेय भी है। किसीने किसी दिन रचा हो कानून बनाया हो, फिर फैलाया हो ऐसा तो नहीं है। तो नास्तिक आदिकका व्यवहार अनादि भी है अपौरुषेय भी है वह अविसम्वादक नहीं है। सत्य नहीं है, तो कोई अपनी श्रुतिको अनादि मान ले, अपौरुषेय मान ले तो इन दोनों बातोंसे अविसम्वादकता नहीं आती। इससे वेदका एक देशरूप कुछ भी मंत्र जैसा कि बताया गया हो जो कि स्वयं अप्रमाण रूप से माना गया है अनादि और अपौरुषेय होनेसे वह प्रमाणभूत नहीं हो जाता अतएव अनादिपना और अपौरुषेयपना यह हेतु अनेकान्तिक दोषसे युक्त है।

निर्दोष कारणसे उत्पन्न आगममें प्रामाण्यकी चर्चा—और भी सुनो! ये मीमांसक जन मानते हैं कि वेद निर्दोष कारणसे उत्पन्न हुए हैं। तो जब कारणमें दोष निवृत्त हो गए तब कार्यमें दोष भी न रहे यही तो उनकी एक कल्पना बनी। तो इस कल्पनासे पौरुषेय वचनमें दोषनिवृत्ति हो जाती है। कोई आगम पौरुषेय हो, उसके द्वारा प्रणीत हो तो उसमें फिर दोष काहेका रहा? जो कोई आगमका प्रणेता है वह निर्दोष भी तो हो सकता है, फिर आगमकी प्रमाणता मनानेके लिए अपौरुषेय पनेपर जोर देना यह युक्त नहीं। अपौरुषेय होकर प्रमाण भी हो सकता और अप्रमाण भी। आगमका कर्ता निर्दोष है तो उसके प्रमाणता आती है। इस बातको पहिली कारिकाओंमें सिद्ध किया गया है कि कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि जिनमें दोष और आवरण रंचमात्र भी नहीं रहते। उस आगमके अध्ययन करने वाले, व्याख्यान करने वाले और सुनने वाले तो रागादिमान हो सकते हैं। मीमांसकोंने भी किसी वीतराग को माना नहीं है। मीमांसक जनोंके सिद्धान्तमें कोई भी आत्मा वीतराग नहीं हो सकता। तो लो वेदके अध्ययन करने वाले व्याख्यान करने वाले तथा श्रवण करने वाले जब वीतराग हैं ही नहीं, रागादिमान हैं तो रागादिमान होनेसे उनकी व्याख्यायें, उनके आशयमें मिथ्यापन तो आ सकता है। वीतरागके आगममें सर्वथा अपौरुषेयत्व का विरोध होनेसे जो पौरुषेय वचन हैं, जो वीतरागके द्वारा कहे गये हैं, उनमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विरोध नहीं होता। और कथञ्चित् पौरुषेय है मायने साधारण जनोंके द्वारा बनाये गए नहीं हैं इसलिये तो अपौरुषेय हैं और वीतराग सर्वज्ञ महा आत्माके द्वारा प्रणीत हैं इस कारण पौरुषेय हैं। तो कथञ्चित पौरुषेय उस वीतरागके द्वारा प्रणीत हो, इसका विरोध नहीं आता, इस कारण स्याद्वाद नीतिका अनुशरण करने वालोंका चित्त निशंक रहता है। कोई यह भी शंका नहीं कर सकता कि देशकाल स्वभाव इन तीनोंसे जो दूर है ऐसा जो वीतराग है, अर्थात् जो इस प्रदेशमें नहीं, इस कालमें नहीं और हम जैसे आत्माओंके स्वभावमें नहीं, ऐसे वीतरागका निर्णय कैसे हो ? और उसका निर्णय न होनेसे यह कैसे कहा जा सकेगा कि आगममें वीतरागके द्वारा कहा गया है। ऐसी आशंका न रखना चाहिए जो देश, काल, स्वभावसे दूर भी हो, उसके भी निर्णयका उपाय बताया गया है। वचनोंमें जो अविसम्वादकता है, ये वचन सत्य हैं, उनमें जो सत्यताकी झलक है वह वक्ताके गुणोंकी अपेक्षासे है। जैसे चक्षु इंद्रियजन्य ज्ञानमें जो अविसम्वादकता है तो नेत्रमें गुण है उसकी अपेक्षासे है और जितने भी विसम्वाद होते हैं वे वक्ताके दोषके समन्वयसे होते हैं। जैसे कि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानका जो अविसम्वादपना है तो ज्ञाताके गुणकी अपेक्षा रखकर है। ज्ञाता सम्यग्दृष्टि है, समवेग वैराग्यवान है तो उसके ज्ञानमें अविसम्वादकता है। और, ज्ञाता पुरुषका दोष मिथ्यादर्शन आदिककी अपेक्षा की जाय तो ज्ञानमें विसम्वादकता उत्पन्न होती है। इसी तरह वक्ताके गुण हैं यथार्थज्ञान करना आदिक। उसकी अपेक्षासे तो ज्ञानमें सम्वादकता है, सच्चाई है, निर्णयकपना है और यदि दोष मिथ्याज्ञान आदिक की अपेक्षा किया जाय तो उसमें विसम्वादकता है। यह बात भली प्रकारसे महाशास्त्र में वर्णित की गई है।

आप्तवचनोंमें संवादकताका निर्णय—जब वक्ताके गुणकी अपेक्षासे सम्वादकपना निश्चित होता है तो अनाप्त वचनका अर्थज्ञान नहीं हो सकता है। अंधरूपके दर्शनकी तरह। जैसे कि जो जन्मसे ही अंधपुरुष हो वह दूसरेके लिए रूप दिखानेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार जो पुरुष आप्त नहीं है वह भी अर्थको तथ्यको जतानेके लिए समर्थ नहीं है। यदि अनाप्त पुरुष सत्य पदार्थको रहस्यको जनानेके लिए समर्थ हो जाय तो यों गलीमें फिरने वाला कोई पुरुष भी सत्य और यथार्थका जनाने वाला हो बैठेगा ! तो सम्वादकवचन वही कहलाते हैं जो वक्ताके गुणकी अपेक्षासे हुए हों। यह बात सिद्ध होनेपर अपौरुषेय वचन हो, गुणवान वक्ताके द्वारा रचित हों तो उनमें कारण दोष न होनेसे निर्दोषता है। अपौरुषेय वचन हों या पौरुषेय वचन हों दोनोंमें अन्य कोई और विशेषता सम्भव नहीं हो सकती। यह कहना होगा कि कारणमें दोष न हो तो उनका निर्दोष वचन कहलायगा। यद्यपि पौरुषेय वचन और अपौरुषेय वचन दोनों ही शब्द निर्मित हैं, उन वचनोंकी समानता है फिर भी जो वचन युक्तिसे युक्त हैं, नय प्रमाणात्मक नीतिसे परखे जा चुके हैं, प्रमाणित हुए हैं ऐसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही वचन समझनेके लिए अथवा दूसरोंको समझानेके लिए शक्य हो सकते हैं। सो वे वचन कथञ्चित् पौरुषेय ही हैं, सर्वथा अपौरुषेय नहीं हैं। सर्वथा अपौरुषेय वचनोंमें युक्तिसंगतता न होनेसे उन युक्तियोंमें प्रमाणाभास माना गया है। तो उनमें अपौरुषेयपना होनेसे वेदमें जो युक्तियुक्त वचन हैं वे ठीक समझने और समझानेके लिए शक्य हैं। जैसे अनेक वचन ऐसे हैं कि एक वर्ष १२ माह होता है अथवा शीतका औषधि अग्नि है आदिक जो वेदके वचन युक्तिसंगत हों वे तो मान लिए जायेंगे, पर अग्निहोत्रादिक वाक्य यहाँ बोलने और समझने वालेको समझानेमें समर्थ नहीं हैं, क्योंकि उन वाक्योंका युक्तिसे युक्तिपना नहीं घटित होता।

आप्तवचनमें हेतुवाद व आज्ञावाद दोनों विधियोंसे प्रामाण्य—यह आप्त पुरुषका वचन है ऐसा सिद्ध होनेपर वहाँ जैसे हेतुवाद होना प्रमाण है उसी प्रकार आज्ञावादभी प्रमाण है, किन्तु उस हेतुवाद और आज्ञावाद दोनों ही वचनोंमें आप्त वचनका अविरोध हो सकता है। शास्त्रमें आगममें जो सिद्धान्त लिखा है वह युक्तिसे समर्थित है यह भी सम्भव है। तो वहाँ हेतुवाद और आज्ञावाद दोनों प्रकारके वचनोंका विरोध नहीं हो सकता है। यहाँ कोई यह शङ्का चित्तमें न रखे कि अपौरुषेयकी तरह आप्तका शासन भी व्यवस्थासे परे है। यह आशङ्का यों न हो सकेगी कि यहाँ आप्त कौन है ? यही तो जाननेमें आना कठिन हो रहा है। वीतराग पुरुषोंकी तरह सराग लोग भी चेष्टा करते हुए पाये जाते हैं, फिर यह ही आप्त है अर्थात् यह ही कुशल पुरुष हैं, जिसकी प्रत्येक बात सत्य हो इस बातके जाननेका कोई उपाय न होनेसे आप्तका शासन ही सत्य है ऐसी व्यवस्था की जाना अशक्य है, ऐसी मीमांसक जन आशङ्का करते हैं। उत्तरमें केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि सर्वथा एकान्तवाद स्याद्वादके द्वारा निराकृत हो जाता है। युक्ति और शास्त्र[illegible]ा अविरोधी वाक्य होनेसे ही कोई पुरुष निर्दोष कहला सकता है और युक्तिशास्त्रका विरोध होनेसे जहाँ आगम प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध वचन हों वहाँ यह निर्णय बनता है कि यह वक्ता दोषवान है। दोषरहित वक्ताके वचन युक्तिसे भी प्रमाणित हैं और आज्ञासे भी प्रमाणित हैं।

वीतराग सर्वज्ञदेवके वचनोंसे सन्मार्गदर्शन—जिसका वचन विशेष निश्चित नहीं है, वह आप्त हो अथवा अनाप्त हो और जिस किसीके वीतरागपनेका या सरागपनेका सदेह हो उतनेपर भी यह तो मानना ही होगा कि जिसका वचन विशेष निश्चित् है उसको ही आप्त बनना व्यवस्थापित किया जा सकता है अर्थात् जिसका वचन विशेष निश्चित् नहीं है उसमें ही यह संदेह हो सकता है कि यह वीतराग है अथवा नहीं ? पर जिसका वचन निर्दोष है उसमें वीतरागपना सभी कुछ बताया जाना शक्य है। आप्त शब्दका अर्थ क्या है ? जिसकी आप्ति हो उसे आप्त कहते हैं। आप्तका अर्थ है साक्षात्कार करना, वीतरागता होना। जिसने समस्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंका प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा साक्षात्कार कर लिया है उसके ही आप्ति कही जाती है। जैसे पहिली कारिकामें सिद्ध किया गया है कि सूक्ष्म दूरवर्ती पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। उस कारिकामें सर्वज्ञताका बडे विस्तारपूर्वक समर्थन किया गया है। जहाँ सर्वज्ञ हो, वीतरागता हो, हितोपदेश हो उसे आप्त कहते हैं अथवा सम्प्रदायका विच्छेद न होना इसको आप्त कहते हैं। सम्प्रदायका अर्थ है परम्परा। जिस सर्वज्ञके आगमकी उत्पत्ति होती है और आगममें बताये गए अर्थका अनुष्ठान करनेसे जो उसमें विधि बताई गई है, परिज्ञान बताया है उसके अनुसार अपनेको ढालनेसे सर्वज्ञ बनता है। इस तरह प्रवचनार्थकी सिद्धि होती है जिसका कोई बाधक प्रमाण सम्भव नहीं है। अन्यथा अंधपरम्पराका प्रसङ्ग आ जायगा। किसी अंधेके द्वारा खींचा गया अंधा अपने इष्ट मार्गको प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् कोई भी अंधा किसी दूसरे अंधेको ले जाकर मार्ग नहीं दिखा सकता। तब जो सम्प्रदाय परम्परामें विधि है उससे ही मार्गदर्शन होता है।

सर्वज्ञता, आगमानुसरण व आगम रचनाकी सत्य परम्परा—सर्वज्ञसे तो आगमकी उपपत्ति हुई और आगमके अर्थके अनुष्ठानसे सर्वज्ञ बना ऐसा काननेमें कोई यह संदेह न करे कि इसमें इतरेतराश्रय दोष होगा। यहाँ इतरेतराश्रय दोष नहीं हैं, किन्तु इसको यदि कारक पक्षमें लिया जाय तो बीज और अंकुरकी तरह इनमें अनादिपना है इस कारण इतरेतराश्रय दोषका अवकाश नहीं है। जैसे कि प्रथम अंकुर बीजसे हुआ और वह बीज अंकुरसे हुआ, वह अंकुर बीजसे हुआ, इस तरह बढ़ते चले जायें तो अनादिताकी बात तो आयगी, पर इतरेतराश्रय दोष न होगा। जब यह अंकुर बीजसे हुआ और वह बीज अंकुरसे हुआ तो अब कैसे क्या बना ऐसा इतरेतराश्रय दोष वहाँ नहीं है। इसी तरह जो आज सर्वज्ञ है वह आगमके अर्थका अनुष्ठानसे हुआ है और जिस आगमका अनुष्ठान किया है वह आगम पहिलेके सर्वज्ञसे उत्पन्न हुआ है। और वह सर्वज्ञ आगमके अर्थके अनुष्ठानसे हुआ है। इस तरह यह परम्परा अनादि मानी जायगी। यहाँ इतरेतराश्रय दोष नहीं है। अब यदि सम्प्रदाय अविच्छेदको ज्ञापक पक्षमें लिया जाय तो ज्ञापक पक्षमें भी किसीकी ज्ञप्ति परसे है, किसीके स्वतः है। जो कार्यभूत आगम है उससे पूर्वकी ज्ञप्ति है और स्वयमेव निस्पन्न स्नान ध्यान आदिकके अनुभवरूप अथवा स्वयं बुद्धताके रूपसे स्वतः भी ज्ञप्ति है इस कारण इतरेतराश्रय दोष नहीं होता। प्रसिद्धके द्वारा अप्रसिद्धकी साधना मानी ही गई है। जब दृष्टिमें सर्वज्ञ प्रसिद्ध है तो उससे आगमकी सिद्धि की जायगी। जिसकी दृष्टिमें आगम प्रसिद्ध है उससे सर्वज्ञकी सिद्धि की जायगी।

अपेक्षाबलसे हेतु सिद्धता व आगम सिद्धताका उपसंहार—सर्व कुछ हेतुसे सिद्ध है, क्योंकि वह करण अर्थात् इन्द्रिय और आप्त वचनकी अपेक्षा नहीं करता। इसी तरह सर्व कुछ कथञ्चित हेतुसे सिद्ध है और कथञ्चित सर्व आगमसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्ध है, क्योंकि इन्द्रिय और साधनकी अपेक्षा न करनेसे । यहां दृष्टियाँ दो कही गई हैं आप्त वचनकी अपेक्षा न करना और इन्द्रिय साधनकी अपेक्षा न करना इन दोनों दृष्टियोंसे ये उक्त दो बातें सिद्ध हुई । अब क्रमसे अर्पित इन दोनों दृष्टियोंसे उभयसे सिद्धि सिद्ध होती है । अर्थात् हेतुसे भी सिद्ध है और आगमसे भी सिद्ध है । जब एक साथ दोनों दृष्टियोंको लिया जाता है तो वहाँ अवक्तव्यपना सिद्ध होता है । शेष ३ भङ्ग पूर्वकी तरह समझना चाहिए । इस तरह सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया युक्त कर लेना चाहिए । इस परिच्छेदमें यह बताया गया है कि जो उभय तत्त्व इस ग्रन्थमें वर्णित किया गया है उसको समझनेका उपाय तत्त्व क्या है ? किस उपायसे उन प्रमेय तत्त्वों के स्वरूपकी समझ आये ? उस सम्बन्धमें बताया गया है कि सर्वतत्त्व कथञ्चित् हेतुसे सिद्ध होता है और कथञ्चित् आगमसे सिद्ध होता है ।

Version 1